वीर सेवा मन्दिर

दिल्ली

★

क्रम संख्या 2

काल नं०

खण्ड

दरियागंज, देहली
२४६

श्रीशान्तिसागरसूरिभ्यो नमः

श्रीमन्तः कुंदकुन्दाद्याः आचार्या मुनिपुंगवाः।
शान्तिसागरपर्यन्तास्तान् वंदे भावतोऽधुना॥

चर्चासागरपर विवादका अंत।

चर्चासागरग्रन्थ पर जो विवाद खड़ा होगया है उसका अंत होनेके लिये सबसे सीधा और सरल उपाय यही है कि दोनों ओरके विद्वान् एवं समाजके चुने हुये धार्मिक पुरुष एक स्थानमें बैठकर इस बातका विचार करें कि चर्चासागरमें कही गई बातोंको जो विद्वान् दि० जैनाचार्य कथित आगमके विरुद्ध कहते हैं वे विरुद्धतासूचक आगम उपस्थित कर दें और जो चर्चासागरमें कही हुई बातोंको प्रमाणभूत बताते हैं वे प्रमाणतासूचक आगम उपस्थित करदें। बस जहां जिस पक्षके साधक आचार्य वाक्य मिल जांयगे वहीं विवादका अंत होजायगा। दूसरे पक्षको फिर कुछ भी कहने सुननेका और आचार्यवाक्योंके प्रतिकूल अपनी युक्तियां समझानेका अवसर नहीं रहेगा।

जब हम लोग आर्षवचनोंपर श्रद्धा रखनेवाले हैं और आर्षविरुद्ध वचनके पोषणमें पाप समझते हैं तो ऐसी दशामें निर्णय होनेमें कुछ भी विलम्ब होनेका या कठिनता पड़नेका कोई कारण नहीं दीखता। उभयपक्षमें आगम प्रमाण माननेवालोंके लिये केवल आगम प्रमाण दिखानेकी आवश्यकता है वहां अपनी २ निजी युक्तियोंका कुछ मूल्य नहीं है।

इस प्रकारका निर्णय करना जिन्हें इष्ट हो उन विद्वानोंसे एवं समाजके विचारशील धार्मिक पुरुषोंसे हमारा नम्रनिवेदन है कि वे बहुत जल्दी एक स्थानमें बैठनेकी योजना करें। परन्तु बिना निर्णयके यदि चर्चासागरको अमान्य ठहरानेकी बात कही जायगी तो वह विद्वत्समाजके लिये हास्यकारक बात होगी और उससे आचार्य वचनोंका घात होनेसे उनके लिये पापबंधकी कारण भी होगी।

प्रतिष्ठाचार्योंको भी इकट्ठा किया जाय।

इसके सिवायनिर्णयका दूसरा उपाय यह भी है कि समाजमें जो संस्कृतके विद्वान् प्रतिष्ठापाठोंके जानकार प्रसिद्ध२ दाक्षिण उत्तरके प्रतिष्ठाचार्य पंडित हैं उन्हें भी बुलाया जाय और प्रतिष्ठाविधि तथा आचार्यकृत प्रतिष्ठापाठोंमें गोमय आरती आदि बातोंके विषयमें क्या विधान है? इत्यादि बातोंका उनसे खुलासा कराया जाय।

हठवाद किसीका नहीं चल सकता।

यह कोई हठवाद या बकवादकी बात नहीं है कि चाहे जो ऊधम खड़ा कर देनेसे समाजको भड़का दिया जायगा। यह आगमकी मान्यता अमान्यताका प्रश्न है इसका निर्णय आगमसे होगा और आगम जाननेवालोंके द्वारा होगा, इस सम्बन्धमें निराधार कुतर्कणाएँ और कोरे हठवादसे काम नहीं चल सक्ता। क्योंकि प्रतिष्ठाविधि एवं चारित्रविधान सब आज्ञावाद है, आचार्य वचनोंपर श्रद्धा करना प्रत्येक धर्मात्माका कर्त्तव्य है जो आगमकी परवा नहीं करनेवाले हैं

उन्हें चर्चासागरको अप्रमाण कहनेका भी कुछ अधिकार नहीं है।

पर्चे निकालनेवालोंने धोखा दिया।

जिन रतनलालजी झांझरी और उन्हीं जैसे विचार रखनेवाले कुछ न्यायतीर्थ और छोटे विचारवाले बाबुओंने चर्चासागरमें गोवरपूजा आदि बताकर समाजको भड़कानेमें और ऊधम मचानेमें कुछ कसर नहीं रक्खी है, उन्होंने समाजको बहुत बड़ा धोखा दिया है। चर्चासागरग्रंथमें गोवरपूजाका विधान कहीं नहीं है यदि हो तो कहनेवाले बतावें? उसमें गोवर आरतीका उल्लेख है, आरती और पूजामें बहुत भेद है, आरती दूभ, सरसों,धान्य आदि मंगल द्रव्योंसे की जाती है जैसा कि सभी प्रतिष्ठापाठोंमें विधान है, परन्तु पूजाकी सामग्री अष्टद्रव्य भिन्न है। चर्चासागरमें गोवरपूजा बताकर, इन लोगोंने समाजको क्यों धोखेमें डाला है? सो भी इनसे पूछा जाय? इसीप्रकार श्राद्धआदि और भी विषय जो पर्चेमें इन्होंने छपाकर प्रसिद्ध किये हैं वे सब चर्चासागरके अभिप्रायके और आचार्यवाक्योंके विपरीत कुछके कुछ लोगोंको समझाये हैं उन सब बातोंका उनसे खुलासा कराना चाहिये।

कुछ न्यायतीर्थोंके प्रति।

जिन न्यायतीर्थ पण्डितोंने झांझरीकी झनकारके साथ अपना राग अलापा है और चर्चासागरको अप्रमाण ग्रन्थ

ठहरानेकी घोषणा कर दी है उन महाशयोंके लिये हम इतना कह देना उचित समझते हैं कि चर्चासागर या कोई सागर आपके कहने मात्रसे अमान्य नहीं ठहर सक्ते हैं। यदि उनके विरोधमें आपके पास कोई आगम प्रमाण हो तो उसे उपस्थित करें। यदि आपके दिखाये हुए आगमप्रमाणसे चर्चासागरका कथन विपरीत होगा तब आपके विना कहे ही चर्चासागर अप्रमाण ठहर जायगा। यदि आपके पास चर्चा-सागरके विरुद्ध आगम नहीं है तो आपके वचनका साधारण जनतापर भी कुछ असर नहीं हो सक्ता, शास्त्रोंके जानकार विद्वान् तो उसे सुनेंगे ही क्या?

इस प्रकार विना शास्त्राधार अंडबंड बोलनेवाले उन न्याय-तीर्थ पंडितोंसे हमारा यह भी कहना है कि आप लोग अभी शास्त्र देखें केवल न्यायतीर्थ परीक्षा पास कर लेने मात्रसे जैन-सिद्धान्तका ज्ञान नहीं हो पाता है। न्यायतीर्थ परीक्षा सिर्फ ३–४ वर्षमें हो जाती है, किन्तु जैनसिद्धान्तके चतुरनुयोगी शास्त्र बहुत गम्भीर और विशाल हैं उनके लिये अनेक वर्षों-तक मनन करने और समझनेकी जरूरत है। बड़े २ दिग्गज विद्वान पं० टोडरमलजी सरीखे भी कह गये हैं कि जैन-शास्त्रोंकी कथनी बड़ी गहरी और अगाध है। हम मंदज्ञानी कहांतक इसे समझ सक्ते हैं। जब गोम्मटसार और धवला-दि ग्रन्थोंके मर्मको समझनेवाले उपर्युक्त विद्वानोंका यह कहना है तो फिर जिन्होंने आचारादि विषयक शास्त्रोंको देखातक नहीं है वे विचारे उस विषयमें कुछ भी कहें तो उनका कहना

कहां तक ठीक हो सक्ता है ? कमसे कम विद्वानोंको तो विना निर्णय किये और विना पूर्वापर शास्त्र देखे झांझरीजी जैसे संस्कृतका अक्षर नहीं समझनेवाले साधारण पुरुषोंके समान सहसा अपनी निजी राय(अपना जजमेंट)शास्त्रोंके विषयमें नहीं देना चाहिये। वे विद्वान् कहलाते हैं इसलिये उन पर भी तो कुछ उत्तरदायित्व है।

यदि वे जिस विषयमें नहीं जानते हैं फिर भी बोलते हैं तो उससे उनकी अनभिज्ञताका परिचय होनेके साथ भोले समाजका भी अहित हो सक्ता है।

हमारा इतना लिखनेका प्रयोजन।

हम जो इतना लिख रहे हैं उसका प्रयोजन यह नहीं है कि हम कुछ अधिक जानकार हैं हम तो शास्त्रोंकी अगाधता के सामने अपने ज्ञानको अतीव तुच्छ और नितांत मंद समझते हैं, परंतु फिरभी इतना लिखनेका आशय यह है कि हमसे आचार्य वचनोंकी अवहेलना अथवा आगमकी आज्ञाके विपरीत आंदोलन सहन नहीं होता है। वैसा होनेसे हम धर्मघात पापबंध, और समाजका पूरा २ अहित समझते हैं और यदि पंडित कहलानेवाले भी आचार्योंके प्रतिकूल घोषणा करें तो फिर पूरा अनर्थ होनेका भय है इसलिये इतना अप्रिय (कटु) सत्य कहनेके लिये हमें बाध्य होना पड़ा है।

चर्चासागर पर इतना आन्दोलन क्यों उठा ?

चर्चासागरके विरुद्ध आन्दोलन उठानेवाले अधिकांश लोग ऐसे हैं जो आगमके बंधनमें नहीं रहना चाहते हैं और देशकालकी परिस्थितिके अनुकूल वर्तमान सुधारवादके साथ बेलगाम घुड़दौड़ लगाना चाहते हैं ऐसे लोगोंकी खास मंशा यह है कि तेरह बीस दोनों आम्नाय वालोंमें मन-मुटाव हो जाय और वे दोनों आपसमें ही शास्त्रोंको अप्रमाण ठहरावें, बस उन लोगोंकी मंशा पूरी होजाय । सुधारवादी तो यह चाहते ही हैं कि शास्त्रोंको अप्रमाण ठहरानेका रास्ता तो खुल जाय, फिर उनके उच्छृंखल प्रचार मार्गमें शास्त्रों-का बंधन बाधक नहीं रहेगा इसीलिये चर्चासागर तो एक बहाना मात्र है उनके लिये तो सभी शास्त्र अमान्य हैं और जिन धर्मगुरुओं (परमपूज्य दिगम्बर वीतराग मुनियों) से समाजका सच्चा कल्याण हो रहा है तथा धर्मविरुद्ध वातावरणका प्रचार नहीं होने पाता है वे वर्तमान आचार्य और मुनिगण भी अमान्य हैं ।

धार्मिक समाजका कर्त्तव्य ।

आज साक्षात् तीर्थंकरोंका विहार नहीं होरहा है और न आचार्यवर्य कुंदकुंद और समन्तभद्र आदि दि० जैनधर्मके प्रव-र्तक आचार्योंका ही अस्तित्व है किन्तु आजकल जो दि० जैन धर्मकी रक्षा तथा उसका प्रचार और समाजका कल्याण हो रहा है वह उन स्वामी कुंदकुंद और समन्तभद्र आदि

ऋषियोंके शास्त्रोंसे तथा वर्तमान आचार्य शान्तिसागर तथा मुनिराजोंके विहारसेही होरहा है, इसीलिये जो लोग शास्त्रों और धर्मगुरुओंकी निन्दा करते हैं या उन्हें अमान्य ठहराते हैं वे धर्मके निन्दक ही समझने चाहिये। और ऐसे लोगोंसे सावधान होकर देवगुरुशास्त्रोंके श्रद्धानमें—व्यवहार सम्यक्त्वमें दृढ़ रहना चाहिये।

चर्चासागर ग्रंथ।

चर्चासागरग्रंथ स्व० पं०चम्पालालजीकी निजी रचना नहीं है किन्तु अनेक आचार्यकृत शास्त्रोंके प्रमाणोंका वह एक संग्रह ग्रन्थ है, इसलिये आपलोग उसपर पूर्ण विचार करें। जो प्रमाण उसमें दिये गये हैं वे किन २ शास्त्रोंके हैं इत्यादि बातोंपर शास्त्रीय निर्णय करें,और विशेषशास्त्रोंके जानकारोंसे करावें। चर्चासागरको सहसा अमान्य कह देनेसे उन सब शास्त्रोंकी अप्रमाणता और अवहेलना होजाती है जिनके कि प्रमाणोंको चर्चासागरमें आजानेसे अप्रमाण ठहराया जाता है।

हमें भी आचार्य वचनोंके विरुद्ध कोई भी बात हरगिज मान्य नहीं है यह निश्चय समझें। और न हमें किसी प्रकारका हटवाद है, जो बात आगमके प्रतिकूल होगी उसे माननेमें हम मिथ्यात्व समझते हैं।

सुधारवादियोंका कर्त्तव्य ।

सुधारवादियोंका कर्त्तव्य है कि वे समाजमें व्यर्थका वितंडावाद खड़ा न करें और न फूटका बीज बोवें, शास्त्रीय विचार और निर्णय करनेके लिये होहल्ला और ऊधम मचानेकी आवश्यकता नहीं है किन्तु शांतिसे विचार करें।

इस लेखमें रतनलालजी झांझरीके पर्चेके सभी प्रश्नोंका समाधान अनेक शास्त्रीय प्रमाणोंसे किया गया है। चर्चासागर ग्रंथको विवादकोटिमें लानेवाले सभी भाइयोंको इस लेखमें दिये गये प्रमाणोंको ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिये।

विनीत—

१६।११।३१ } मक्खनलाल शास्त्री,
मोरेना (ग्वालियर)

॥ श्री वर्धमानायनमः ॥

चर्चासागरपर शास्त्रीय

॥

धार्मिक समाजमें फूट बोनेके साथ तेरह बीस दोनों आम्नायोंसे परस्परमें ही शास्त्रोंको अमान्य ठहरानेका निंद्य प्रयास।

कुछ दिन हुए चर्चासागर ग्रन्थके सम्बन्धमें एक पर्चा कलकत्ताकी दि० जैन युवक सामितिके मन्त्री बाबू रतनलालजी झांझरीने छपाकर जगह २ बटवा दिया है, इस वर्ष जब हम बेलगछियाके श्री जिन मंदिरजीमें शास्त्रजी पढ रहे थे, उस समय उक्त महाशय चर्चा सागर ग्रन्थको साथ लेकर वहां आये और शास्त्र सभामें बैठते ही अपने पर्चेके अनुसार उन्होंने हमसे शंकाएँ करना शुरू किया, उनकी पहली शंका यही थी कि मुनियोंको वनमें ही रहना चाहिये फिर चर्चासागरमें उनके रहनेका नगरमें विधान क्यों किया गया है? इस शंकाके उत्तरमें जब प्रमाण दिये गये और चर्चा सागर ग्रन्थ जो झांझरीजी स्वयं साथ लाये थे खुलवाकर वांचा गया तब उसमें श्री पद्मनंदिआचार्यविरचित पद्मनंदिपंचविंश-

तिका, शास्त्रका प्रमाण मिला। उसमें स्पष्ट लिखा हुआ है, कि इस कलिकाल पंचम कालमें मुनियोंकी स्थिति जिनालयमें रह सक्ती है, इस पर हमने कहा कि क्या पद्मनंदि आचार्यका कथन भी आपको मान्य नहीं है ? उसी समय शास्त्र सभामें बैठे हुए कलकत्ता समाजके वयोवृद्ध प्रतिष्ठित श्रीमान् सेठ विरधीचन्दजीने कहा कि झांझरीजीका कहना ठीक नहीं है जब कि प्रमाण उपस्थित है तब फिर क्या कहा जाय। इतना सुनकर झांझरीजीने इस सम्बन्धमें कोई जवाब नहीं दिया। हमने उनसे उसी समय यह भी कहा था, कि आपने विना विद्वानों द्वारा निर्णय किये अपनी ओरसे फैसला पर्चेमें क्यों छपा दिया ? आप अभी हमारे पास शंकाएँ कर रहे हो, परन्तु अपना निर्णय और चर्चासागरको अमान्य ठहरानेकी बात पहलेसे ही जाहर कर चुके हो, यह क्या समझदारीकी बात है ? हमने उनसे यह भी कहा था कि आप विधवा-विवाह जैसे अनर्थों तक का तो निषेध नहीं करते हो जिनका कि किसी भी शास्त्रमें समर्थन नहीं मिलता है और विना शास्त्रोंको देखे ही शास्त्रीय विषयोंको अमान्य ठहराते हो यह ठीक नहीं है। अस्तु,

चर्चासागरग्रन्थ पर आन्दोलन करनेका मौका क्यों लग गया ?

विचारे झांझरीजी ही अकेले क्या ? किन्तु इस प्रकारका आन्दोलन चर्चासागरके विषयमें उठानेवाले अधिकतर

सुधारक भाई हैं, जिन लोगोंकी वर्तमान मुनियोंपर श्रद्धा नहीं है और जो आचार्यवचनोंकी परतन्त्रतामें नहीं रहना चाहते हैं उन्हीं विचारवाले भाइयोंका उठाया हुआ यह आंदोलन है, ये हमारे भाई बहुत दिनोंसे देख रहे हैं, कि वर्तमान मुनियोंके विहारसे जनता दृढ़ श्राद्धिक बनती जाती है, लोग शूद्रजलतक धड़ाधड़ छोड़ते जा रहे हैं. अनेक प्रकारकी धार्मिक प्रतिज्ञाएँ ले रहे हैं ऐसी दशामें बाजारू खानपान छूत अछूतका भेद लोप, जाति पांति लोप विधवा-विवाह आदि बातें समाजमें किसप्रकार प्रचलित हो सकती हैं। जब लोग शूद्रजलतक छोड रहे हैं तब होटलोंमें खाना, चाहे जिसके हाथकी चीज खाना, और कांग्रेसी मन्तव्यके अनुसार अस्पृश्य शूद्रोंतकसे सम्बन्ध रखना इत्यादि बातें कैसे प्रचारमें लाई जा सकती हैं ? इस प्रकारके सुधार मार्गमें ये वर्तमान मुनिगण पूर्ण बाधक हैं और धार्मिक समाजकी उनपर पूर्ण भक्ति और श्रद्धा बढती जा रही है, उसी श्रद्धा और भक्तिको उठानेके लिये यह चर्चासागरकी चर्चाका सहारा मौकेपर अच्छा मिल गया है।

इस बातमें तनिक भी संदेह नहीं है कि इन सुधारकोंके हृदयमें मुनियों पर थोडी भी श्रद्धा नहीं है। श्रद्धा तो बहुत दूरकी बात है किंतु वे लोग अपने निर्मर्याद उच्छृंखल मार्गमें इन मुनियोंको पूरा बाधक समझते हैं इसलिये दरबारी लालजी सरीखे तो खुले रूपमें मुनियोंको लंगोटी पहननेकी बात लिख चुके हैं और अनेक ऐसे हैं जो लोकलज्जा और

अपनी प्रतिष्ठा एवं ऊपरी धार्मिक बाना पहन कर दस्बारी लालजीका भीतर ही भीतर समर्थन करते हैं वे बाहर नहीं आते हैं।

शास्त्रोंको ये लोग ताकमें रख चुके हैं।

इसी प्रकार शास्त्र भी उनके मार्गमें बाधक हैं इसलिये उन्हें भी ये लोग तो ताकमें रख ही चुके हैं अन्यथा यदि शास्त्रोंको ये लोग ताकमें नहीं रख चुके होते तो फिर स्त्रियोंको रजस्वला अवस्थामें भी श्रीजिन मंदिरजीमें कैसे प्रवेश करानेकी बात कहते ? जिस स्त्रीकी रजस्वला अवस्थामें चाण्डाल तुल्य अवस्था बताई है जिसका प्रथम दिन मुख-दर्शन भी शास्त्रकारोंने निषिद्ध बताया है स्पर्श करना तो बहुत दूरकी बात है उसे जिन मंदिरमें जाने दो यह कहना क्या साधारण बात है ? इसी प्रकार छोटी उम्रमें विधवाको विधवा नहीं समझना उसे क्वारी कन्या बताना क्या फिर विवाह—पद्धति कुछ चीज नहीं रही ? विवाह यदि देश काल और छोटी बडी उम्रके अनुसार बदल जाता है तो फिर विवाहका ध्येय,लक्षण और मोक्ष मार्गता एवं शुद्ध सन्तातिका प्रादुर्भाव आदि बातें क्या कभी सिद्ध हो सकती हैं ? चमारों मुसलमानोंको शुद्ध करना और उनके साथ खान पानादि करना क्या यह अघोरीपना नहीं है ? ऐसी प्रवृत्ति तो स्पृश्य शूद्र भी नहीं कर सक्ते हैं, परन्तु दिगम्बर जैन कहलानेवाले तो इनका खुली रीतिसे घोषणा अखबारोंमें कर रहे हैं

घोषणा ही क्यों? खुलेआम डंका बजाकर प्रवृत्ति भी कर रहे हैं, चमार और मुसलमानों तकको शुद्ध किया गया है और उनके साथ खान पानादि किया गया है प्रमाण जिन्हें चाहिये वे शोलापुर आदि स्थानोंकी हकीकत मालूम कर लें वहां की सब घटना छप चुकी है।

जितनी ये बातें हमने ऊपर लिखी हैं वे सब, दिगम्बर जैन कहानेवाले अनेक भाई कहरहे हैं और उनके प्रचारार्थ अखबारोंमें जोरोंसे आंदोलन भी मचारहे हैं, यदि ये लोग समस्त दिगम्बर जैन शास्त्रोंको ताकमें नहीं रख चुके होते तो ऊपर कही हुई बातें क्या किसीभी दिगम्बर जैन शास्त्रसे सिद्ध होसकती हैं' किसीकी क्या हिम्मत है कि किसी भी दि०जैन ग्रन्थसे उपर्युक्त बातोंको सिद्ध कर बतावे ? फिर तो जैनत्व और दिगम्बरत्वही क्या शेष रहेगा ?

उपर्युक्त बातों पर विरोध क्यों नहीं ?

इतनी निकृष्ट और दि० जैन धर्मसे सर्वथा विपरीत बातोंका अखबारोंमें समर्थन और प्रचार देखते हुए भी इन झांझरी जी और उनको आगे रखकर चर्चासागर ग्रंथ पर पर्चा छपा छपा कर हौहल्ला मचानेवालोंने उन शास्त्रविरुद्ध तथा धर्म कर्मको और जैनत्वको जड़ मूलसे नष्ट करनेवाली बातोंका इतना जोरसे आंदोलन क्यों नहीं उठाया ? जैसा कि आज इस चर्चासागर ग्रन्थको अमान्य ठहरानेके लिये पर्चेपर पर्चे धड़ाधड़ निकाले जारहेहैं। यदि

उपर्युक्त शास्त्रविरुद्ध बातोंके प्रतीकारार्थ ये लोग ऐसा आंदोलन उठाते तो दि० जैन समाजका सच्चा कल्याण होता।

यदि चर्चासागर ग्रंथ पर इन महाशयोंको धर्मविरुद्ध प्रवृत्ति होजानेका पूरा भय है अथवा आम्नाय बिगड जानेका पूरा डर है तो उससे सहस्र गुना भय धर्म कर्म एवं जैनत्वके समूल नष्ट हो जानेका होना चाहिये था और चर्चासागरकी चर्चासे बहुत पहले जो उपर्युक्त धर्म विहीन बातें जिन लोगों द्वारा प्रचारमें लाई गई हैं उनके प्रतीकारार्थ इस चर्चासागरके विरोधमें छपाये हुए—धर्म विध्वंसक कुचेष्टा—नामक पर्चेसेभी बहुत भारी रूपमें समूल " जैनत्व लोपक कुचेष्टा" और "दिगम्बर मुनि मार्ग एवं मोक्षमार्गलोपक कुचेष्टा" आदि हेडिंग देकर पर्चे छपाकर जगह २ बंटवाना चाहिये था ? परंतु सो कुछ नहीं किया गया इससे सिद्ध होता है कि यह आन्दोलन आम्नायकी रक्षाके लिये नहीं है किंतु शास्त्रोंको अप्रमाण ठहरानेके लिये है।

धर्मविरुद्ध बातोंके विरोधमें जिन्होंने एक अक्षर भी नहीं लिखा वे आज धर्मात्मा समाजको चेतावनी दे रहे हैं, और यह भी बतानेका भारी साहस कर रहे हैं कि जो धर्मगुरु हैं और जो धर्मरक्षक गृहस्थ हैं वे ही धर्मको डुबाये देते हैं ? क्या इस प्रकारकी उछल कूद और प्रयास, धर्मात्मा समाजके हृदयमें कभी स्थान पा सक्ता है ? कभी नहीं। इस छलपूर्ण गंदनका तनिक भी प्रभाव धर्मात्मा समाज पर नहीं हो सक्ता है। यह तो एक नाटक रचा गया है.

ऐसा नाटक क्यों रचा गया ?

इस प्रकारके नाटक रचनेके कई कारण हैं एक तो यह है कि वर्तमान मुनियों परसे लोगोंकी श्रद्धा उठ जाय। और दूसरा कारण यह है कि शास्त्रोंको अप्रमाण ठहरानेका मार्ग समाजमें खुल जाय। इस मार्गके खुल जानेसे फिर जहां कहीं शास्त्रोंमें जो बातें सुधारकोंके हृदयमें नहीं जचेंगी वे झट अप्रमाण ठहरा दी जांयगी। आज चर्चासागर है, कल श्रावकाचार है फिर आदि पुराणका संस्कार प्रकरण है फिर प्रतिष्ठा पाठ तथा अनेक पुराण हैं इस रूपसे अनेक ग्रन्थ अप्रमाण ठहराये जाने लगेंगे। यही एक मार्ग ऐसा खुलेगा जिससे सुधारक लोग इच्छानुसार प्रवृत्ति करनेमें और यथेच्छ विचारोंके प्रवर्तनमें विना किसी रुकावटके लग बैठेंगे।

तीसरा कारण यह है कि आज इन सुधारक भाइयोंके कुविचारोंके विरोधमें तेरह वीस सभी धर्मात्मा मिलकर धर्मरक्षामें लगे हुए हैं और इनके शास्त्रविरुद्ध मन्तव्योंका सामुदायिक संगठन द्वारा पूर्ण विरोध कर रहे हैं इसीलिये ये लोग अपने समयानुसार प्रचारमें सफलता प्राप्त नहीं कर सक्ते हैं, परन्तु इस चर्चासागर ग्रन्थके विवादको सामने लानेसे सुधारक भाई समझ रहे हैं कि तेरह वीस पन्थवालोंमें परस्पर झगडा एवं मतभेद हो जाय वैसी दशामें उनकी समुदाय शक्ति छिन्नभिन्न हो जायगी फिर उनके सुधार मार्गके लिये बाधकता भी नहीं रहेगी। अथवा वह शक्ति परस्परमें ही क्षीण होकर असमर्थ बन जायगी तेरह वीस दोनों

आम्नायवाले परस्परमें ही शास्त्रोंको अप्रमाण बतावें फिर सुधारक भाई शास्त्रोंकी मर्यादासे समाजको हटा हुआ देखकर अपने उच्छृंखल मार्गका खूब प्रचार करें यह निंद्य प्रयास भी इस चर्चासागरकी चर्चासे सोचा गया है।

चौथा कारण यह है कि इस चर्चासागरकी चर्चाके बहाने अपने कषायोंके उदयको चरितार्थ किया जा रहा है यह सबको मालूम है कि यह ग्रन्थ श्रीसेठ हंसराजजी लुहाड्याकी ओरसे प्रकाशित किया गया है । श्रीसेठ चैनसुख गम्भीरमलजीने तो इसमें थोडीसी सहायता मात्र दी है । परन्तु इन लोगोंका सेठ हंसराजजीसे कोई विरोध नहीं है । विरोध केवल सेठ चैनसुख गम्भीरमलजीसे है । क्योंकि सेठ चैनसुख गम्भीरमलजी कलकत्ता रहते हैं । वे वहांके एक प्रमुख और प्रतिष्ठित श्रीमान् हैं और धर्मविरुद्ध बातोंको वे सुनना भी पाप समझते हैं इसीलिये वहांका कुछ सुधारकदल अपने सुधारके प्रचारमें उन्हें प्रमुख बाधक समझकर किसी न किसी रूपसे उनसे बदला लेना चाहता है । यही कारण है कि यह आन्दोलन कलकत्तासे उठा है और उसे चर्चासागरका एक बहाना मिल गया है । यदि यह आन्दोलन धर्मबुद्धिसे किया जाता तो रत्नोंकी मालाओंतकका विरोध क्यों किया जाता ? इससे यह साफ जाहिर है कि ये लोग अपना दिली विरोध निकाल रहे हैं इसके सिवाय और कुछ नहीं है ।

इस आन्दोलनसे लोग अपने सुधारका रास्ता साफ

करना चाहते हैं। परन्तु उन्हें समझ लेना चाहिये समझदार धर्मात्मा उनके इस चंगुलमें कभी नहीं फँस सकते। वे इन पैंतड़ोंको खूब अच्छी तरह समझते हैं। जिन लोगोंने बाबू शीतलप्रसादजीका विधवाविवाहका निंदनीय हृदय पच्चीस वर्ष पहले समझ लिया था वे क्या इस आंदोलनका भाव नहीं समझ सकते? इसीलिये जैसे उनको सफलता नहीं मिली वैसे ही इनको भी कभी सफलता नहीं मिल सकती।

धर्मात्माबंधुओंसे निवेदन।

यहां पर हम खुलासा करदेना भी उचित समझते हैं कि इस चर्चासागरके विरोधमें आंदोलन उठानेवाले कलकत्ता, देहली, सतना रोहतक आदिस्थानोंके केवल सुधारक भाई ही हों ऐसा भी नहीं है, और न हमारा यह लिखनेका अभिप्राय ही है कि जितने चर्चासागरके विरोधी हैं वे सब सुधारवादी हैं किन्तु हमारा कहना सिर्फ इतनाही है कि जिन महाशयोंने इसका आंदोलन उठाया है उनका भाव कोई धार्मिक भावोंसे प्रेरित हो और आम्नायोंसे प्रतिकूल बातको वे नहीं सहन कर सके हों इसलिये उन्होंने यह आंदोलन खडा किया हो सो कुछ नहीं है किंतु उनकी नीति कुछ और ही है, वे आम्नाय कायम करते होते तब तो कोई बातही नहीं थी, फिर तो उन्हें हम समझा सक्ते थे और वे हमें समझासक्ते थे, इतने उद्यमकी कोई बात नहीं होती, परंतु वहां तो शास्त्रोंको अमान्य ठहरानेका जबर-

दस्त हठ है और वह भविष्य उच्छृंखल प्रवृत्ति चलानेकी पूरा साधन है,इसलिये हमें इतना खुलासा करनेके लिये बाध्य होना पड़ा है।

परन्तु इस चर्चासागरके विरोधमें धार्मिक समाजका एक बड़ा हिस्सा भी है, वे सज्जन भी इसके विरोधी हैं जो पक्के धार्मिक और धर्म विपरीत मार्गसे पूरा भय खाते हैं ऐसे धार्मिक पुरुष भी कलकत्ता देहली आदि स्थानोंमें अनेक हैं, जिन्हें चर्चासागरकी अनेक बातें आम्नाय विपरीत प्रतीत होती हैं, उनका विरोध और किसी दुरभिप्रायसे नहीं है किन्तु आम्नायभेद होनेसे ही उनका विरोध है। इसलिये चर्चासागरके विरोधमें भी पूरा लक्ष्यभेद है। इसलिये प्रसंगवश हम अपने धार्मिक बंधुओंसे बडी नम्रताके साथ यह निवेदन कर देना चाहते हैं कि, वे चर्चासागर ग्रंथ या अन्य किसी दिगम्बर शास्त्रका सहसा बहिष्कार न कर बैठें और न किसी शास्त्रको सहसा अप्रमाण या अमान्य ही ठहरानेका साहस करें, ऐसा करनेसे हमारी तो कुछ हानि नहीं है और न कोई स्वार्थ है परंतु आपही जिनवाणीके अविनय कर्ता और पापबंधके भागीदार हो जायँगे। दूसरी बात यह है कि आप स्वयं विचार करें, इन सुधारक भाइयोंके बहकावेमें हरगिज नहीं आवें खेद इस बातका है कि इन महाशयोंके चक्रमें धर्मात्मा भाई भी आ जाते हैं आज आपको आम्नायका भय दिखाकर चर्चासागरका आपसे बहिष्कार अथवा उसकी अमान्यताका सार्टीफिकेट

ये लेना चाहते हैं, कल दूसरे ग्रंथोंको आपके सामने अमान्य ठहरानेको रक्खेंगे शास्त्रोंको अमान्य ठहरानेका मार्ग बहुत बुरा है और आगे आप लोग स्वयं पश्चात्ताप करेंगे, हाँ जो बात आपको मान्य नहीं है, उसे मत मानिये यह आपकी इच्छापर है; परंतु आप शास्त्रोंको अमान्य ठहरावें इसे हम तो सर्वथा अनधिकार चर्चा कहेंगे।

हमरा यह भी कहना नहीं है कि चर्चासागरमें यादि वास्तवमें धर्मविपरीत बातें भरी हुई हैं फिरभी उसे प्रमाण माननेके लिये अथवा आगमग्रंथ कहनेके लिये हम आपको कहते हों, किंतु हमारा कहना यह है कि जो बातें चर्चासागरमें कही गयी हैं वे अनेक प्रसिद्ध आचार्योंकी रचनायें हैं और उन्हीं अनेक शास्त्रोंके प्रमाणोंको चर्चासागर-ग्रंथमें संग्रह किया गया है।

चर्चासागर संगृहीत ग्रन्थ है।

चर्चासागर ग्रंथ कोई स्वतंत्र ग्रंथ या श्री० पं० चम्पालालजीकी कृति (रचना) नहीं है किंतु चर्चासागर एक संग्रह ग्रन्थ है। पं० चम्पालालजीने अनेक शास्त्रोंका स्वाध्याय किया होगा और उस समय अनेक शास्त्रोंके भिन्न २ प्रकारके अनेक प्रमाण इकट्ठे किये होंगे, उन सब प्रमाणोंको चर्चाके रूपमें रख दिया है इसीका नाम चर्चासागर रख दिया है।

चर्चासागर अप्रमाण या अमान्य कैसे ठहराया जा सकता है ?

इसलिये या तो चर्चासागर ग्रंथको यदि अप्रमाण ठहराया जायगा तो जिन ग्रंथोंका यह संग्रह है वे सभी ग्रंथ अप्रमाण ठहरते हैं, अथवा जो बातें चर्चासागरमें कही गई हैं वे बातें दूसरे जिन ग्रंथोंमें पाई जाती हैं वे ग्रंथ यदि प्रमाणभूत समझे जाते हैं तो फिर चर्चासागर किसी प्रकार अप्रमाण कोटिमें नहीं आ सकता है। यदि चर्चासागरमें संग्रह की गई बातें अन्य ग्रंथोंमें तो प्रमाणभूत मानी जाती हैं और चर्चासागरमें वे संग्रह कर दी गई इसलिये अप्रमाण ठहराई जाती हैं तब तो कहना होगा कि कौंसिलसे स्वीकृत की हुई धाराएँ सरकारी रिपोर्टमें तो मान्य हैं और उन्हीं धाराओंका किसी अन्य स्थलमें अवतरण दिया जाता है तो अवतरणरूपमें दिखलाई गई वे स्वीकृत धाराएं भी अप्रमाण या अमान्य कर दी जांयगी ? परंतु ऐसा नही होता है जो धाराएं गवर्नमेंट द्वारा स्वीकृत हो चुकी हैं वे तो स्वीकृत ही समझी जाती हैं।

इसलिये जो बातें आचार्यकृत शास्त्रमें प्रमाणभूत मानी जाती हैं उनके आधार पर सर्वत्र कार्य व्यवहार चल रहा है और वह भी पूर्ण प्रमाणभूत है तब वे ही बातें चर्चासागरमें यदि संग्रहरूपमें रख दी गई तो उन्हें किस प्रकार अप्रमाण कहा जा सकता है ? जब कि वे बातें उन्हीं आचार्योंके वचनों सहित (संस्कृत प्रमाणों सहित) रक्खी गई हैं।

किन २ ग्रंथोंको अप्रमाण कहाजायगा ?

यदि कहाजाय कि जो बातें—चर्चासागरमें कही गई हैं वे बातें यदि दूसरे ग्रन्थोंमें भी कही गई हैं तो वे ग्रन्थ भी अप्रमाण समझे जायँगे तो फिर चर्चासागरको अप्रमाण या अमान्य ठहरानेकी सम्मति देनेवाले महाशय और उसी प्रकारकी सम्मतिमें ही अपनी हाँ में हाँ मिलानेवाले पं० गजाधरलालजी न्यायतीर्थ आदि कृपाकर यह प्रगट करें कि वे दिगम्बर जैन ग्रन्थोंमें किन २ ग्रन्थोंको अप्रमाण ठहराते हैं या समझते हैं अथवा किन २ ग्रंथोंको अपनी सम्प्रदाय (?) में शास्त्र रूपसे कत्तई स्थान देनेके लिये तय्यार नहीं हैं ? सो प्रगट करें और कृपया यह भी प्रगट करें कि किन २ ग्रथोंसे सिद्धान्तमें बाधा पहुंचती है और कौन २ ग्रंथ प्रचारमें नहीं लाये जावें, आप लोगोंके द्वारा शास्त्रोंकी छटनी जब सामने आजायगी तब हम सरीखे लोग भी इस बातका विचार करेंगे कि दि० जैन धर्मका कितना भाग मान्य है और कितना अमान्य है ? हमारी तो यही प्रगाढ़ धारणा है और हमारा यही सम्यकत्व है कि जितने भी दिगम्बाराचार्यप्रणीत वचन हैं वे सब पूर्ण प्रमाण-भूत हैं और वे ही दि० जैन धर्म हैं, दिगम्बर जैन धर्म आर्य-समाजका धर्म नहीं है जो मनमाने रूपसे जितनी बातें जिस ग्रंथ की समझमें आई या जितनी बातोंसे प्रयोजन साधना हो उतनी मानलीं बाकीके लिये चट

अप्रमाणताकी छाप लगा दी। आर्यसमाजियोंके साथ जिन्होंने शास्त्रार्थ किया है या देखा है वे इस बातको भली भांति जानते हैं कि वे लोग अपने शास्त्रोंपर भी स्थिर नहीं हैं, जहां कहीं जैन विद्वानोंने उनके शास्त्रोंमें बाधा बताई या वेदमें हिंसा बताई तो वे चट कह बैठते हैं कि यह भाग तो हमें मान्य नहीं हैं, यहां तक कि वे जिन दयानन्दको सर्वस्व प्रमाण मानते हैं उनके कार्यमें भी जहां विरोध एवं असमंजसता देखते हैं वहां उनका अर्थ भी प्रमाण न मानकर अपना अर्थ नये ढंगसे गढने लगते हैं। अभी पानीपतके शास्त्रार्थमें वे यहां तक कह बैठे कि आर्यसमाजको अभी पौने दो वेद ही मान्य है बाकी सवा दो वेद मान्य नहीं हैं।

परन्तु दि० जैन धर्मकी ऐसे फुटबोली मतोंसे तुलना नहीं की जा सक्ती, वह सर्वज्ञ भाषित धर्म है और सर्वज्ञ वचनोंके आधार पर ही दिगम्बर जैनाचार्योंने अनेक शास्त्र आचार्य परम्पराको प्रमाण मान कर रचे हैं इस लिये वे सब बातें पूर्ण प्रमाणभूत हैं और उनमें कहीं कोई विरोध एवं अनुपायता भी नहीं है, इस लिये हमको एक भी आचार्य वचनको अप्रमाण कहने या समझनेमें पाप बन्ध समझते हैं, और ऐसा ही सम्यक्त्वका स्वरूप है। यदि हमारे इस वक्तव्यमें भी कोई फर्क है तो कोई विद्वान् सम्यक्त्वका स्वरूप शास्त्राधारसे हमें समझा देवें कि इससे भिन्न व्यवहार सम्यक्त्व क्या है ?

चर्चासागरमें किन २ आचार्योंके प्रमाण हैं ?

चर्चासागर ग्रन्थमें अनेक आचार्योंके प्रमाण दिये गये हैं उनमेंसे कुछ प्रसिद्ध २ आचार्योंके नाम नीचे दिये जाते हैं।

१ भगवज्जिनसेनाचार्य
२ रविषेणाचार्य
३ आचार्य वट्टकेर स्वामी
४ चामुण्डरायमहाराज
५ आचार्य पद्मनंदि
६ आचार्य उमास्वामि
७ आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी
८ आचार्य समन्तभद्र स्वामी
९ स्वामि कार्तिकेय मुनि
१० आचार्य सोमदेव
११ आचार्य वसुनंदि
१२ आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती
१३ आचार्य श्रुतसागर
१४ आचार्य अमृतचन्द सूरि
१५ आचार्य गुणभद्र
१६ आचार्य वीरनंदि
१७ आचार्य अमितगति
१८ आचार्य माघनंदि
१९ आचार्य शुभचन्द्र
२० आचार्य इन्द्रनंदि
२१ महाकलंकदेव आचार्य
२२ श्री० समन्तभद्रस्वामी

इनके सिवा और भी अनेक आचार्योंके प्रमाण चर्चासागरमें दिये गये हैं जिनका खुलासा चर्चासागरकी चर्चाओंमें दिये गये प्रमाणोंसे भली भाँति पाठक जान सक्ते हैं।

चर्चासागरमें जिन आर्ष ग्रन्थोंके प्रमाण दिये गये हैं उनमेंसे कुछ शास्त्रोंके नाम यहां दिये जाते हैं—

१ आदिपुराण
२ मूलाचार
३ पद्मनंदि पंचविंशतिका
४ मोक्षशास्त्र
५ स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा
६ यशस्तिलक चम्पू
७ वसुनंदि श्रावकाचार
८ गोम्मटसार
९ हरिवंशपुराण
१० पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय
११ ज्ञानार्णव
१२ षट्पाहुड
१३ पद्मपुराण
१४ चारित्रसार
१५ आचारसार
१६ श्रीपालचरित्र
१७ रत्नकरण्ड श्रावका-
चार
१८ अकलङ्कदेव विरचित
प्रतिष्ठापाठ
१९ आचार्य इंद्रनादि विर-
चित प्रतिष्ठापाठ
२० त्रिलोकसार
२१ रयणसार
२२ प्रायश्चित्त चूलिका
प्राकृत
२३ आत्मानुशासन
२४ जिन प्रतिष्ठापाठ
२५ उत्तर पुराण
२६ सुदर्श चरित्र
२७ प्रश्नोत्तर श्रावकाचार
२८ सिद्धान्तसार दीपक
२९ जम्बूचरित्र
३० पार्श्वपुराण
३१ दीक्षाकल्प
३२ पूजासार
३३ लघुबृहत्स्वयन
३४ आराधनाकथाकोष
३५ जिनयज्ञकल्प
३६ अजितपुराण
३७ शान्तिचक्र रत्नाकर
३८ शांतिचक्र ऋषिमण्डल
३९ जिनसंहिता
४० अकलंक प्रायश्चित्त
४१ चैत्यभक्तिपाठ

इन उपर्युक्त ग्रंथोंके सिवा और भी अनेक शास्त्रोंके प्रमाण चर्चासागरग्रंथमें दिये गये हैं।

चर्चासागरग्रंथको अप्रमाण ठहरानेवाले भाई और विद्वान् कृपाकर यह प्रगट करें कि उक्त ग्रंथोंमेंसे वे किन २ ग्रंथोंको अप्रमाण समझते हैं? इस प्रश्नका खुलासा होनेसे चर्चासागर ग्रंथकी प्रमाणता या अप्रमाणताके निर्णय करनेमें देरी न लगेगी।

खासकर हम पं० गजाधरलालजी न्यायतीर्थसे इस उपर्युक्त प्रश्नका समाधान चाहते हैं क्योंकि कलकत्ताकी जिस युवक सोसाइटीसे चर्चासागरके विषयमें पर्चेपर पर्चें निकाल कर धार्मिक जनतामें अशांति और भ्रम फैलाया जा रहा है, उस सोसाइटीके सहायक एकमात्र पण्डित उक्त न्यायतीर्थजी ही हैं और अभी पर्वके दिनोंमें जब हम कलकत्ताके बड़े मंदिरजीमें रात्रिको शास्त्र पढ़ रहे थे तब श्रोताओंके प्रश्न करनेपर उनके पक्ष समर्थनमें बाबू छोटेलालजीके साथ उक्त पं० जी वहां आये थे और उन्हें हम विद्यानुवाद ग्रंथद्वारा प्रमाण दिखला रहे थे तब भी उन प्रमाणोंकी कुछ भी परवा न करके पं० गजाधरलालजीने यह बात कही थी कि "चर्चासागरकी मैं एक भी बात माननेके लिये तयार नहीं हूँ" इस प्रकार बिना सोचे विचारे और अनेक क्रियाकाण्ड सम्बन्धी शास्त्रोंको देखे बिना ही सहसा चट कुछ भी मत जाहिर कर दिया जाय और सामने रक्खे हुए आगम प्रमाणोंकी

कुछ भी परवा न की जाय यह बात देखकर तो हमें बहुत आश्चर्य हुआ। अस्तु, अब पं० गजाधरलालजी खुलासा करें कि वे कौन २ ग्रंथ और कौन २ ग्रंथकी कौन २सी बातें प्रमाण माननेके लिये तयार नहीं हैं ?

चर्चासागरके विषयमें फैलाये गये भ्रमका निराकरण।

चर्चासागरके विषयमें "धर्मविध्वंसक कुचेष्टा नामक पर्चा निकालकर जो भ्रम भाई रतनलालजी झांझरीने धार्मिक समाजमें फैलाया है उस भ्रमका निराकरण हम नीचे लिखे प्रमाणों द्वारा करते हैं, सबसे पहले उन्हीं विषयोंका खुलासा करदेना हम उचित समझते हैं जिनपर कि बहुत जोर देकर समाजको भड़काया जा रहा है।

मुनियोंके नगरमें रहनेके सम्बन्धमें विचार।

झांझरीजीने पर्चेमें चर्चा नं० १९ का उल्लेखकर इन्वर्टेट कामाके भीतर लिखा है कि " कलिकालमें मुनियोंको वनोंमें नहीं बसना चाहिये " यह वाक्य तो कामाके भीतर रखकर चर्चासागर ग्रंथका बताया है, इसके नीचे झांझरीजी स्वयं अपनी सम्मति देते हैं—" बहुत ठीक, नाम तपस्वी और वनमें बसना नहीं चाहिये ? सारे ग्रंथोंकी मान्यता तो यही है कि मुनि वनोंमें ही बसें, क्या आजकल तपस्या नगरोंमें ही होसक्ती है. वनोंमें नहीं " यह झाझरीजीकी निजी सम्माति है।

अब हम पाठकोंको चर्चासागरका कथन बताते हैं, चर्चासागरमें लिखा हुआ है कि–

" इस पंचमकालमें वर्तमान समयमें होनेवाले मुनियोंकी स्थिति श्रीमंदिरजीमें बतलाई है यह बात श्रीपद्मनंदि पंचविंशतिकाके छठे अधिकारमें लिखी है " ये पंक्तियां चर्चासागरकी हैं। चर्चासागरका अभिप्राय तो इतनाही है कि आजकल मुनि वनोंमें नहीं रहसक्ते हैं इसलिये वे जिन मंदिरजी आदि गृहस्थ जनशून्य स्थानोंमें नगरोंमें भी रहसक्ते हैं इसका यह अर्थ करना कि चर्चासागरने मुनियोंके बनमें निवास करनेका सर्वथा निषेध ही किया है यह समाजको धोखा देना और उलटा समझाना है। बनोंका निषेध किस प्रकार किया जासक्ता है जब कि मोक्ष प्राप्ति और घोरतपश्चरण बनोंमेंही साध्य है परंतु कलिकालमें परिस्थिति और हीन संहनन आदि कारणोंसे मुनियोंका नगरमें चैत्यालयादि स्थानोंमें रहजानेका कथन वनोंमें रहनेका निषेधक नहीं कहा जा सक्ता है। परंतु झांझरीजीने पर्चेमें उलटा समझाया है।

साथ ही उन्होंने जोरदार यह दावा भी किया है कि– "सारे ग्रंथोंकी मान्यता तो यही है कि मुनि वनोंमें ही बसें"

झांझरीजी बिचारे न तो संस्कृत ही पढ़े हैं और न वे विद्वान् ही हैं इसलिये उनके दावाकी तो हम कुछ कीमत नहीं

समझते हैं हां झांझरीजीका पूरा साथ देनेवाले—पर्चे की प्रत्येक बातका समर्थन करनेवाले पं० गजाधरलालजी न्यायतीर्थ उपर्युक्त सारे ग्रंथोंकी मान्यताके इस दावेको कि "मुनि वनमें ही बसे" किस प्रकार सिद्ध करते हैं सो वे प्रगट करें।

हम नीचे लिखे प्रमाणोंसे यह बात खुलासा करते हैं कि इस पंचम कालमें मुनियोंके लिये चैत्यालय आदि-स्थानोंमें नगरमें रहनेका भी विधान है यह बात अनेक शास्त्रोंसे सिद्ध है; देखिये—

भाव संग्रह शास्त्र—आचार्य देवसेन रचित।

(माणिकचंद ग्रंथमालाका छपा हुआ पृष्ठ ३२ श्लोक १२७)

संहणणस्स गुणेणय दुस्समकालस्स तव पहावेण
पुरणयरगामवासी थविरे कप्पे ठियाजाता

इस गाथा का अर्थ इस प्रकार है—

संहननके गुणसे अर्थात् संहननकी हीनता होनेसे तथा दुःखमां कालके गुणसे तथा तपके प्रभावसे अर्थात् तप का प्रभाव मंद हो जानेसे इन कारणोंसे मुनिगण पुरमें नगरमें और ग्राममें निवास करते हैं वे स्थविरकल्पी मुनि कहे जाते हैं।

"पुरनगर ग्रामवासिनः—" यह इतना खुलासा वाक्य है जिसके विषयमें किसी को कुछ कहने की जगह नहीं रह-जाती है. आचार्यने पुर, नगर, ग्राम, तीनोंका नाम देकर

यह स्पष्ट कर दिया है कि मुनिगण छोटे २ गावोंमें ही निवास करें इतना ही नहीं किंतु पुर और नगरोंमें भी निवास कर सक्ते हैं, आचार्य महाराजने "पुरणयरगाम-वासी" पद दिया है इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आहार के लिये ही नगरों और ग्रामोंमें आवे हों ऐसा नहीं हैं किंतु उनमें निवास करते हैं वे स्थविरकल्पी कहे जाते हैं।

किन्हीं महाशयोंका यह भी कुतर्क उठाया जा सकता है कि स्थविरकल्पी मुनियोंका भेद श्वेताम्बरोंका है दिगम्बरोंमें तो जिनकल्पी और स्थविरकल्पी भेद नहीं होंगे, उनके समाधानके लिये हम इन्हीं आचार्यवर्य देवसेनके कथनसे स्पष्ट किये देते हैं—

इसी भावसंग्रह ग्रंथके श्लोक ११९ को देखिये—

दुविहो जिणेहि कहिओ जिणकप्पो तहय थविरकप्पो य
सो जिणकप्पो उत्तो उत्तम संहणणधारिस्स ।

इसका अर्थ यह है कि—श्री जिनेंद्रदेवने मुनियोंके दो भेद किये हैं एक जिनकल्प दूसरा स्थविरकल्प। इनमें जिनकल्प मुनि वे कहलाते हैं जो उत्तम संहननके धारण करनेवाले हैं।

आगे इसी ग्रंथमें जिनकल्पी मुनियोंका स्वरूप चार गाथाओं द्वारा आचार्यने स्पष्ट किया है. उन गाथाओंका अर्थ यह है कि जिनके पैर में कांटा न लगे, नेत्रोंमें रज

प्रवेशन न करै, जो वर्षा ऋतुमें छह महीना तक निराहार रहकर कायोत्सर्ग ध्यानमें स्थिर हो जायं, और ग्यारह अंग के धारी हों. धर्मध्यान शुक्लध्यानी हों, समस्त कषायोंको छोड चुके हों, और मौन पूर्वक पहाड़ोंकी कंदराओं (गुफाओं) में निवास करते हों, ऐसे उत्तम संहननके धारी जो जिनेन्द्रके समान विहार करनेवाले जिनकल्पी मुनि कहे जाते हैं.

प्रमाणके लिये गाथा देखिये–

जत्थ ण कंटयभग्गो पाये णयणम्मि रयपविट्ठम्मि
फेडांति सयं मुणिणो परावहारे य तुण्हिक्का
जल वरिसणवा याई गमणे भग्गे य जम्म छम्मासं
अच्छंति णिराहारा काओसग्गेण छम्मासं
एयारसंगधारी एयाई धम्म सुक्कझाणयि
चत्तासेस कसाया मोणवई कंदरावासी
वहिरंतरगंथचुवा णिण्णेहा णिप्पिहा य जइवइणो
जिण इव विहरांति सदा ते जिण कप्पेठिया सवणा।

आगे स्थविर कल्पी मुनियोंका स्वरूप है वह इस प्रकार है–

स्थविर कल्पी मुनि वे कहे जाते हैं जो समस्त वस्त्रोंका त्याग कर नग्न रहनेवाले हों, अकिंचन हों और कुछ भी परिग्रह नहीं रखते हों, कषायको जीतनेवाले हों, पंच महाव्रत-धारी हों, एकवार खडे होकर करपात्रमें भोजन करते हों सो भी नवधा भक्तिपूर्वक समयमें श्रावक द्वारा भोजन अया-

चक वृत्तिसे लेते हों, षडावश्यक पालते हों, पृथ्वीमें सोते हों केश लोंच करते हों पुस्तकादि ऐसा उपकरण रखते हों जिससे उनकी चर्याका भंग नहीं होता हो और जो समुदायसे विहार करते हों, अपनी शक्तिके अनुसार धर्मकी प्रभावना करते हों, भव्य जीवोंको धर्म श्रवण कराते हों, शिष्योंको सम्हालते हों यद्यपि संहनन उनका अति नीचेका है काल भी दुखमा है, मनभी चपल है, फिरभी वे धीर वीर मुनिमहाव्रत धारण करनेमें उत्साहित रहते हैं आदि ।

प्रमाणके लिये गाथा देखिये—

थविरकप्पोवि कहिओ अणयाराणं जिणेण सो एसो
पंचच्चेलच्चाओ अकिंचणत्तं च पडिलिहणं
पंच महव्वय धरणं ।ठिदिभोयण एकभत्त करपत्तो
भात्तभरेणय दत्तं काले य अजायणी भिक्खं
दुविहतवे उज्जमणं छव्विहआवासएहि अणवरयं
।खिदिसयणं सिरलोओ जिणवर पडिरूव पडिगहणं
उपयरणं तं गहियं जेण ण भंगो हवेइ चरियस्स
गहियं पुत्थयदाणं जोग्गं जस्स तं तेण
समुदाएण विहारो धम्मस्स पहावणं ससत्तीए
भवियाण धम्म सवणं सिस्साण य पालणं गहणं
संहणणं अइणिच्चं कालो सो दुस्समो मणो चवलो
तहविह धीरापुरिसा महव्वयभरधरणउच्छहिया

यहां पर आचार्यवर्य देवसेनने कितने महत्त्वकी बातोंका

विधान किया है पाठकोंको यह लक्ष्यमें लाना चाहिये। जिन कल्पीके लिये तो उन्होंने छह महीना तक निराहार रहकर एकान्त गुफाओंमें मौन पूर्वक ध्यान लगानेवाले बताया है और उत्तम संहनन वाले ही वैसे पात्र बताये हैं परंतु स्थविर-कल्पी मुनियोंके लिये उन्होंने दुःखमा कालका दोष, संह-ननकी अति हीनताका दोष और मनकी चपलताका दोष बताकर उनके महाव्रत धारण करनेको ही बहुत भारी मह-त्त्व बताया है और उनके लिये समुदायसे रहकर धर्म प्रभा-वना करना, शिष्योंको सम्हालना तथा श्रावकोंको धर्मोपदेश देना आदि बातोंका उल्लेख किया है और हीन संहनन दुःख-मा काल और तपकी हीनता आदि कारणोंसे मुनियोंको नगरोंमें और गावोंमें निवास करनेका विधान किया है।

हमारे अनेक भाई ऐसे हैं जो वर्तमान मुनियोंको मुनिपदमें ही नहीं समझ रहे हैं। और धर्मात्मा पुरुषोंके श्रद्धानको भी शिथिल बनाकर उन्हें गुरु भक्ति एवं स्वात्मकल्याणसे वंचित बना रहे हैं, स्वयं तो इतने हीनताको पहुंच चुके हैं कि देवदर्शन भी नहीं करते हैं, रात्रिमें भोजन करते हैं, होटलोंमें खाते हैं, डाक्टरी दवाऐं गटकते हैं, जल छान कर नहीं पीते हैं, चाहे जैसे भक्ष्याभक्ष्य पदार्थ खाते हैं, जिनके किसी प्रकारकी मर्यादा नहीं है, पाक्षिक श्रेणीमें भी जो जघन्य दर्जेका अष्टमूल गुणका धारण करनेका विधान बताया है सो भी जिनमें नहीं पाया जाता है नाम मात्रके जैनी बने हुए हैं

वे भी मुनियोंकी समालोचना बडे जोरोंसे कर रहे हैं, यह कितनी अनधिकार चर्चा है पाठक स्वयं विचारें।

हमारे अनेक भाई ऐसे भी हैं जो मुनियोंका स्वरूप पुराण शास्त्रोंमें, पढ चुके हैं या सुन चुके हैं कि मुनि वृक्षके कोटरोंमें गुफाओंमें, गरमीमें पहाड पर, सरदीमें नदीकिनारे, वर्षामें वृक्षके नीचे ध्यान लगाते थे, जिनके शरीरपर वेलें चढ़ जाती थीं और सर्प बिल बना लेते थे वे ही मुनि कहलाते थे, आज कल नगरोंमें गावोंमें रहनेवाले मुनि किस प्रकार समझे जांय ऐसे भोले धर्मात्मा भाइयोंसे भी हमारा निवेदन है कि थोड़ा वस्तु स्वरूप समझनेका भी वे प्रयत्न करें, जितना उन्होंने देखा है उतनाही वस्तु स्वरूप और उतने ही शास्त्र नहीं हैं किन्तु उनसे बहुत अधिक हैं। जिन मुनियोंका ऊपर उल्लेख किया गया है वे कौन थे यह भी उन्हें सोचना चाहिये, वे जिन कल्पी मुनि थे, उनका संहनन उत्तम था, वे उसी भवसे घोर तपश्चरण कर मोक्ष जाने वाले थे, वह काल भी चौथा काल था, उनका तप–प्रभाव भी इतना बढ़ा चढ़ा था कि उनके पास बैठे हुए सिंह व्याघ्र भालु आदि महाक्रूर जीव भी वैर विरोध छोड़कर शान्त भावसे उन मुनिराजके निकट आकर बैठ जाते थे, आज कल तो मोक्ष गमनका मार्ग ही सर्वथा इस कालमें इस भरत क्षेत्रसे बन्द हुआ और संहनन कहां उत्तम और कहां अति नीच, ऐसी अवस्थामें केवल मुनिकी उच्च कोटिकी तुलना तो पूर्वकालके मुनियोंसे करते

हैं परन्तु और साधनोंका और तपके फलका कुछ भी ध्यान नहीं करते हैं, आज कल जब मोक्षका दरवाजा सर्वथा बंद है तो क्या यह अर्थ सहज सिद्ध नहीं होगा कि आज कल उतनी घोर तपश्चर्या भी नहीं हो सक्ती है। इसीलिये तो मोक्षगमन बंद है। घोर तपश्चर्या उतनी इसलिये नहीं कि वह संहनन नहीं है हम लोग तो कार्तिक शुरू होते ही ढाई तीन सेर रुईकी सौड ओढे विना और उसे ओढ कर भी भीतर बंद कमरोंमें नीचे उतनी ही रुईका गद्दा बिछाकर सोते हैं, वही शरीर तो वर्तमानमें मुनियोंका है, फिर उसी शरीरसे मुनि पहाडोंपर और सर्दीमें नदी किनारे ठहर कर किस प्रकार नीच संहनन वाले शरीरकी रक्षा कर सक्ते हैं सो तो थोडा अनुभव करो। और जब उतना घोर तप नहीं है तब सिंहादि क्रूर जीवोंके भावोंमें परिवर्तन होनेकी सामर्थ्य भी नहीं है। ऐसी दशामें आज कल मुनिगण जंगलोंमें किस प्रकार रह सक्ते हैं ? सो विचार करें। फिर भी वर्तमानमुनि मुनिपदके योग्य पूर्ण महाव्रत और उत्तम तपश्चर्या करते ही हैं। उस तपश्चर्याके प्रभावसे आचार्य शान्तिसागर जैसे महातपस्वियोंके शरीर पर सर्प दो दो घंटे तक क्रीडा कर चुका है और वे ध्यानस्थ रहे हैं।

इसके सिवा पहले अनेक ऋद्धिधारी मनःपर्ययज्ञानी आदि गुणोंके धारी मुनि होते थे आज कल तो मनःपर्यय की उत्पत्ति होना अशक्य ही है फिर तुलना कैसे करते हो। सो कुछ समझमें नहीं आता।

पहले श्रावक लोग मुनिभक्तिसे प्रेरित होकर जंगलोंमें, जगह २ मुनि निवासके लिये वसतिकाएँ बनवाते थे, आज कल उन वसतिकाओंका जो मुनियोंके निवास और उनके ध्यानादिसाधनोंके लिये बनवाई हुई कही नहीं दीखती हैं जिनमें जाकर मुनिगण रहें और ध्यान करें, क्या श्रावक लोग कोरी कुतर्कणा करना और अपना अक्षरज्ञ पाण्डित्य दिखाना ही जानते हैं या अपना कर्तव्य पालन भी कुछ जानते हैं ? पहले अनेक पुरुषोंके यह भी प्रतिज्ञा थी कि मुनियोंको आहार देकर ही हम आहार करेंगे और इस प्रतिज्ञाके पालनार्थ जंगलोंमें भी जाते थे परन्तु आजकल जंगलमें जाना तो लम्बी बात है अपने घरोंमें भी आहार देनेके भाव और भोजन शुद्धि की योग्यता बहुत कम देखी जाती है क्या इन मुनि समालोचकोंको अपनी जघन्यताका भी कुछ ख्याल है ?

यदि कहा जाय कि फिर वर्तमानमें ही संहनन या कालदोषसे मुनिपदका धारण भी नहीं हो सक्ता तो इसके उत्तरमें उन्हें श्रीनेमिचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ती आदि आचार्योंके त्रिलोकसारादिग्रन्थोंसे अपनी श्रद्धाको शुद्ध और दृढ बनालेना चाहिये कि मुनि इस पंचम कालके अंत समय तक इस भरतक्षेत्रमें रहेंगे। देखिये त्रिलोकसार मुद्रित, आचार्य नेमिचंद विरचित पृष्ठ ३४४ श्लोक ८५९।

पंचम चरिये पक्खड मास तिवासोवसे सए तेण ।
मुणि पढम पिंड गहणे सण्णसणं करिय दिवसतियं ॥

इसका भाव यह है कि जब पंचम कालके समाप्त होनेमें सिर्फ तीन वर्ष आठ महीना और १५ दिन बाकी रह जायंगे, उस समय मुनिराज जब आहार लेने लगेंगे उस समय कल्की (कलंकी) राजा उनके हाथसे भोजनका ग्रास (कवल) कर लगान रूपमें लेगा उसी समय मुनिराज अन्तराय समझ कर आहार छोड कर संन्यास धारण करेंगे अभी पंचम कालमें सिर्फ २५०० वर्ष बीते हैं और १८००० वर्ष अभी बाकी है, और जब सिर्फ पंचमकालमें साडे तीन वर्ष बाकी रहेंगे। तब इस पंचमकालके भरतक्षेत्रवर्ती मुनियोंका क्या वर्तमान मुनियोंसे भी अधिक तप, सामर्थ्य आदि होंगे ? नहीं उस समय इनकी अपेक्षा भी कमती रूपमें सामर्थ्य और तपःप्रभाव रहेगा, फिर भी उनमें मुनिरूप वैसा ही आचार्योंने बताया है जैसा चतुर्थकालमें होता है।

वर्तमान मुनियोंमें भी मुनिरूपता वैसी ही है जैसी पूर्वकालमें थी, अट्ठाईस मूल गुणोंका पालन और भी मुनियोग्य सभी चर्या बराबर वर्तमान मुनियोंमें पाई जाती है, इसलिये ये वर्तमान मुनिगण भी उसीप्रकार वंदनीय एवं परम पूज्य हैं जैसे चतुर्थकालमें थे देखिये—

षट् प्राभृत—आचार्यवर्य कुन्द कुन्दस्वामी विरचित
(छपा हुआ पृष्ठ ३५९, श्लोक ७६)

भरहे दुस्सम काले धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स
तं अप्पसहावाठिदे णहु मण्णइ सो वि अण्णाणी।

अर्थ—आचार्यवर्य कुंदकुद स्वामी कहते हैं कि इस कलिकाल

पञ्चमकालमें भरतक्षेत्रमें आत्मस्वभाव स्थित दिगम्बर मुनियोंके धर्मध्यान होता है। जो ऐसा नहीं मानता है वह पुरुष भी पापी और जिनसिद्धांतसे बाहर हैं।

स्वामी कुंदकुंद और भी कहते हैं—

अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पाझाए वि लहंति इंदत्तं
लोयन्तियदेवत्तं तत्थचुआ णिव्वुदिं जंति।

(षट् प्राभृत गाथा ७७)

अर्थात् इस पञ्चमकालमें होनेवाले मुनिगण भी रत्नत्रयको धारण कर एवं आत्माका ध्यान कर इंद्रपदको पाते हैं, तथा लौकांतिक देव होते हैं, वहांसे चयकर मनुष्य पद पाकर मोक्ष चले जाते हैं।

इस गाथाको आचार्य श्रुतसागर कहते हैं कि—

"ये कथयंति महाव्रतिनो न विद्यन्ते ते नास्तिका जिनसूत्रबाह्या ज्ञातव्याः"

अर्थात् जो लोग यह कहते हैं कि आजकल महाव्रती होते ही नहीं हैं वे नास्तिक हैं और जिनसूत्रसे—जिनागमसे बाहर हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टि हैं, अस्तु।

मुनि चैतन्यालयोंमें निवास करते हैं इसके और भी प्रमाण।

ऊपर कहे हुए भावसंग्रहके स्थविर कल्पी मुनियोंके कथनसे यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो चुकी है कि इस पंचम कालमें मुनिगण पुर, नगर, गांवमें निवास करते हैं। इतना स्पष्ट प्रमाण होनेसे अब अधिक प्रमाणोंकी आवश्यकता

नहीं है फिर कतिपय और प्रमणोंद्वारा हम मुनियोंका निवास चैत्यालय आदि स्थानोंमें होता है इस बातको और भी खुलासा करते हैं—

रत्नमाला ग्रंथमें आचार्य शिवकोटि लिखते हैं—

कलौ काले वने वासो वर्ज्यते मुनिसत्तमैः ।
स्थीयते च जिनागारे ग्रामादिषु विशेषतः ॥

पृष्ठ १०४ श्लोक २२ (छपा हुआ ग्रन्थ)

इसका अर्थ यह है कि इस कलिकाल पञ्चमकालमें उत्तम मुनिराज वनमें निवास नहीं करते हैं और ग्रामादिकोंमें जिन-मंदिरमें रहते हैं ।

यह रत्नमाला ग्रंथ आचार्य शिवकोटिका है जिन्होंने मुनि-चर्या मुनिप्रवृत्तिको बहुत बड़े विस्तारके साथ बतानेवाले भगवती आराधना ग्रंथको रचा है, जो आज मुनिनिरूपक ग्रंथोंमें सर्वमान्य शास्त्र समझा जाता है उसी ग्रंथके रचयिता आचार्य शिवकोटि रत्नमालामें मुनियोंका निवास कलिकालमें नगर ग्रामादिकोंमें चैत्यालयोंमें बताते हैं ।

और भी प्रमाण ।

प्रश्नोत्तरोपासकाचार (प्रश्नोत्तर श्रावकाचार)

मुद्रितपत्र २३२ श्लोक १७१

जिनेन्द्रमंदिरे सारे स्थितिं कुर्वन्ति योगिनः ।
तेभ्यो संवर्धते धर्मो धर्मात्संपत् परं नृणाम् ॥

इसका अर्थ यह है कि सारभूत जिनमंदिरोंमें मुनिगण निवास करते हैं, और उन मुनियोंके द्वारा धर्मकी वृद्धि होती है उस धर्मसे मनुष्योंको परम सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है ।

और भी प्रमाण-

पद्मनंदि पंचविंशतिका-आचार्य पद्मनंदि कृत छपी हुई पृष्ठ १९५ श्लोक ६

संप्रत्यत्र कलौ काले जिनगेहे मुनिस्थितिः ।
धर्मश्च दानमित्येषां श्रावका मूलकारणम् ॥

अर्थ–वर्तमान कलिकालमें मुनियोंकी स्थिति जिन मंदिरमें बतलाई है, और उसी मुनिस्थितिसे धर्म और दान प्रवर्तित होते हैं और इन सब बातोंके–अर्थात् जिन मंदिरोंमें होनेवाली मुनिस्थिति, धर्म और दान इन सबके मूलकारण श्रावक होते हैं ।

जो दूसरा पर्चा–खण्डेलवाल जैन हितेच्छुका प्रलाप नामका रतनलालजी झांझरीने छपाकर बांटा है, उसमें उन्होंने श्री पं० चंपालालजीका अर्थका अनर्थ करनेवाले तथा श्री० पं० इन्द्रलालजी शास्त्री महोदयको उनका मनमाना समर्थक बताया । है अब हम इसीका विचार करते हैं कि अर्थका अनर्थकर शास्त्राज्ञालोपी झांझरीजीही हैं इसी प्रकार 'जिनगेहे' इस पाठको पं० गजाधरलालजी न्यायतीर्थने अशुद्ध बताया था और कहा था कि 'जिनगहो' पाठ ठीक है. इसके प्रमाणमें एक अशुद्ध लिखीहुई प्रति भी हमें दिखाई थी जिसमें 'जिनगहो' पाठ था और उसी अशुद्ध पाठके आधारपर उसी प्रतिसे भाषाकारने वैसा अर्थ भी कर दिया है । परंतु जिनगहो तो अशुद्ध पाठ है वह किसी व्याकरण और कोषसे बनता नहीं है. इतना सब कुछ समझते हुए भी पं०

जी चर्चासागरमें दिये गये पाठको विना किसी आधारके अशुद्धही कहते रहे. अस्तु आज पं० जी युवक मंडलके कार्य-कर्ताओंके अनुगंता हैं, इसलिये वे किसी शास्त्रके विषयमें कुछ भी कह दें तो आश्चर्यकी बात नहीं है, परंतु वीर सं० २४४० में उन्होंने पद्मनंदि पंचविंशतिकाका स्वयं अनुवाद किया है और वह ग्रंथ विक्रेता बद्रीप्रसादजी द्वारा छपाकर प्रकाशित किया गया है उसमें पं० जी ने स्वयं "जिनगेहे" पाठ रक्खा है अब वे यदि चर्चासागरके पाठको अशुद्ध कहते हैं तो स्वयं अपने द्वारा संशोधित और कई प्रतियोंसे देखकर लिखे गये पाठको शुद्ध कहेंगे या अशुद्ध ? यदि शुद्ध कहते हैं तो चर्चासागरका पाठ सुतरां शुद्ध है. यदि वे अपने द्वारा अनुवादित पाठको भी अब अशुद्ध ठहराते हैं तो क्या इसे हम युवक मंडलका ही प्रभाव समझें या और कुछ ?

पंडितजीने इस श्लोकका अर्थ करनेमें वास्तवमें भूल की है। भूल ही नहीं सरासर आचार्योंके अभिप्रायके विरुद्ध अर्थ लिखा है जो कि नीचे लिखे प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध हो जाता है।

मान लीजिये कि—

"जिनगेहे" पाठ न मानकर "जिनगेहं" यही पाठ ठीक समझाजाय तो फिर श्लोकमें "सम्प्रत्यत्र कलौ काले" ये पद क्यों दियेगये हैं "वर्तमान समयमें कलिकालमें इस भरत क्षेत्रमें" इन पदोंका फिर क्या प्रयोजन होगा ?

क्योंकि श्रावक गण तो जिनमंदिर बनवाने मुनिमार्ग और धर्म, दानके सदैव मूल कारण हैं, इस कलिकालमें ही क्यों, वे तो सदैव कारण हैं, कलिकाल पद देनेका और वर्तमान समय देनेका प्रयोजन तो यही सिद्ध होता है कि वर्तमान समयमें मुनिगणोंका जिन मंदिरोंमें निवास होनेसे धर्म और दानकी प्रवृत्ति बनी रह सक्ती है।

यदि किसी प्रतिमें जिनगहो, ऐसा अशुद्ध पाठ मिलता है और उसके अनुसार अर्थ भी कियागया है तो वह वास्तवमें गलत पाठ है, शुद्ध पाठ "जिनगेहे मुनिस्थितिः" यही है, प्रमाणके लिये इसी पद्मनंदि पंचविंशतिका शास्त्रकी संस्कृत टीका देखिये—संस्कृतटीका—अत्र कला काले—पंचमकाले सम्प्रति—इदानीं जिनगेहे—जिनचैत्यालये, मुनिस्थितिः वर्तते इति हेतोः धर्मः दानञ्च, एषां मुनिस्थितिदानधर्माणां मूल-कारणं श्रावकाः सन्ति ॥ ६ ॥ इस संस्कृतटीकाका अर्थ स्पष्ट है कि इस कालिकाल पंचमकालमें इस समय जिनमंदिरोंमें मुनियोंका निवास होता है, इसीलिये धर्म और दान की प्रवृत्ति चल रही है, इन जिनमंदिरोंमें रहनेवाली मुनिस्थिति धर्म, और दान इन सबोंके मूल कारण श्रावक हैं।

इस संस्कृतटीकाके विवेचनसे जिनगेहे मुनिस्थितिः इस पदका अच्छी तरह खुलासा हो जाता है।

इसके सिवाय झालरापाटन, बम्बई, देहली और आराके विशाल सरस्वती भवनोंमें भी इस पाठकी खोज की गई, तथा कराई गई उसका विवरण इस प्रकार है—

झालरापाटनमें पद्मनंदिपंचविंशतिकाकी चार प्रतियां हैं जिनमें दो पूर्ण और दो अपूर्ण हैं। अपूर्ण प्रति अधिक प्राचीन है उन चारों ही प्रतियोंमें यह श्लोक आ गया है और उन सबमें जिनगेहे " ऐसा ही पाठ है। तथा उसकी संस्कृत टीका भी वही है जो हम ऊपर लिख चुके हैं।

आराके सिद्धान्त भवनमें भी इस पद्मनंदिपंचविंशतिकाकी दो प्रति हैं उन दोनोंमें " जिनगेहे मुनिस्थितिः" ऐसा ही पाठ है। बम्बईमें भी इसकी कई प्रतियां हैं और संस्कृत टीका भी है जो कि बहुत प्राचीन हैं उनमें भी "जिनगेहे मुनिस्थितिः" ऐसा ही पाठ है।और टीकाका पाठ भी ऊपर लिखे अनुसार है।

तथा देहलीकी संवत १६९१ की प्राचीन प्रतिमें भी " जिनगेहे मुनिस्थितिः " यही पाठ है।

इन सब प्रमाणोंसे यह अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है कि "जिनगेहे मुनिस्थितिः" यही पाठ ठीक है। और यही पाठ संस्कृत टीकाके अनुसार प्राचीन आचार्यसम्मत है। और इसी पाठका अर्थ अनेक शास्त्रोंसे मिलता है। स्वयं पद्मनंदिपंचविंशतिकाके दूसरे श्लोकसे भी मिलता है।

इस पर भी इतने प्रमाणोंके होते हुए भी यदि पं० गजाधरलालजी अपने लिखे हुए संस्कृत पाठको अशुद्ध बताते हैं और भूल और असावधानीसे लिखे हुए अपने हिंदी अनुवादको अब भी सही बताते हैं तो फिर उन्हें गोम्मटसारके नीचे लिखी गाथाका स्मरण कर लेना चाहिये। यथा—

सुत्तादो तं सम्मं दरसिज्जं तं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदा पहुदि॥

अर्थात् जिस किसीने किसी अज्ञात गुरुसे किसी तत्त्वका स्वरूप विपरीत समझा हो और फिर शास्त्र दिखाकर उसका यथार्थ स्वरूप समझाया जाय और फिर भी वह उसे न मानें तो फिर उसे मिथ्यादृष्टि ही समझना चाहिये।

इसके सिवा आचार्यवर्य पद्मनंदि महाराजने इसी पद्मनंदि पंचविंशतिकामें और भी प्रमाण दिये हैं जिनसे मुनियोंका निवास जिन चैत्यालयोंमें बताया गया है आज पं० जी नगरों और चैत्यालयोंमें मुनियोंके रहनेका निषेध करनेमें यहां तक झांझरीजी आदिका साथ दे रहे हैं कि पद्मनंदिपंचविंशतिका ग्रंथके पाठको भी अशुद्ध ठहरा रहे हैं, परंतु अपने द्वारा लिख गये अनुवादमें वे स्वयं मुनियोंका नगरों और चैत्यालयोंमें निवास करना बड़े जोरसे बतला चुके हैं। क्या यह समय और समागमकी बलिहारी नहीं है।

देखिये यहां पर हम पद्मनंदिपंचविंशतिका ग्रंथका ही दूसरा प्रमाण भी देते हैं, और पं० गजाधरलालजीने जो अपने अनुवादमें अर्थ और भावार्थ उस श्लोकका लिखा है उसे ही ज्यों का त्यों रखते हैं—

यत्र श्रावकलोक एव वसतिः स्यात्तत्र चैत्यालयो।
यस्मिन् सोऽस्ति च तत्र सन्ति यतयो धर्मश्च तै वर्तते॥

धर्मे सत्यघसंचयो विघटते स्वर्गापवर्गाश्रयं। सौख्यं भावि नृणां ततो गुणवतां स्युः श्रावकाः सम्मताः॥

(पद्मनंदिपंचविंशतिका-छपी हुई (पृष्ठ २२६ श्लोक२०)

"अर्थ—जिस नगर तथा देशमें श्रावक लोग रहते हैं वहां पर जिनमंदिर होता है और जहां पर जिनमंदिर होता है वहां पर यतीश्वर निवास करते हैं और जहां पर यतीश्वरोंका निवास होता है वहां पर धर्मकी प्रवृत्ति रहती है. तथा जहां पर धर्म की प्रवृत्ति रहती है वहां पर अनादिकालसे संचय किये हुए प्राणियोंके पापोंका नाश होता है तथा भाविकालमें स्वर्ग तथा मोक्ष के सुखोंकी प्राप्ति होती है इसलिये गुणवान मनुष्योंको धर्मात्मा श्रावकोंका अवश्य आदर करना चाहिये।"

"भावार्थ—धर्मात्मा श्रावकही अपने धनसे जिनमंदिरको बनवाते हैं तथा जिनमंदिरोंमें यतीश्वर निवास करते हैं और यतीश्वरोंसे धर्मकी प्रवृत्ति होती है तथा धर्मसे पापोंका नाश तथा उत्तम स्वर्ग मोक्ष आदिके सुखोंकी प्राप्ति होती है इत्यादि ये समस्त बातें श्रावकोंके द्वारही होती हैं. यदि श्रावक न होवे तो ये बातें कदापि नहीं होसक्ती इसलिये ऐसे उत्तम श्रावकोंका भव्यजीवोंको अवश्य आदर सत्कार करना चाहिये"

पद्मनंदि पंचविंशतिका छपीहुई पृष्ठ २२६

यह ऊपरका अर्थ और भावार्थ पं० गजाधरलालजीका लिखा हुआ उनके द्वारा अनुवादित छपी हुई पद्मनंदि पंच-

विंशतिकाका है । पं० जी उसी पद्मनंदिपंचविंशतिकाके कथनको चर्चासागरमें आजानेके कारण अप्रमाण ठहराते हैं, और जिनमंदिरमें मुनिस्थितिके विधानका "जिनगेहे मुनि स्थितिः" इस पाठको अशुद्ध ठहराकर निषेध करते हैं, परंतु अब ऊपरके श्लोक और स्वयं किये हुए अर्थ भावार्थको वे क्या कहेंगे ? क्या अब इसकोभी बदलेंगे ? कहां कहां क्या क्या बदलेंगे ? इस श्लोकमें अर्थ भावार्थमें तो इस बातका पूरा खुलासा होजाता है कि नगरोंके जिनमंदिरोंमें मुनीश्वर निवास करते हैं और उन्हींसे धर्म और ज्ञानादि प्रवृत्ति चलती है। इस अर्थसे ऊपरके " संप्रत्यत्र कलौ काले जिनगेहे मुनिस्थितिः । धर्मश्च दानमित्येषां श्रावका मूलकारणं " इस श्लोककाभी " इस कलिकालमें जिनमंदिरोंमें मुनियोंकी स्थिति रहती है और उसी स्थितिसे धर्म और दानकी प्रवृत्ति चलती रहती है और इन बातोंके श्रावक गणही मूल कारण हैं"। यह अर्थ अच्छी तरह लगता है । अस्तु ।

तथा प्रश्नोत्तर श्रावकाचारका जो श्लोक ऊपर दिया जा चुका है उससेभी यह अर्थ बराबर मिल जाता है ।

और भी प्रमाण

सुण्णघर गिरिगुहारु रूखमूल आगंतुगारदेवकुलं ।
अक्कुद्प्पाभारारामघरादिणि य विवित्ताइं ।

आचार्य शिककोटिकृत भगवतीजी आरधना
छपी पत्र ९७ गाथा ३६

इसी गाथाकी पं० सदासुखजीकी वचनिका इस प्रकार है–

" सूना गृह होय, वा गिरिकी गुफा होय, तथा वृक्षका मूल होय, तथा आगंतुक जो आवनेवाले जावनेवालेनिके विमश्राका मकान होय, तथा देवकुल होय, तथा शिक्षागृह होय, तथा अकृत प्राग्भार कहिये कोई करि आपके निमित्त किया नहीं होय वा बागबगीचेनिके महल मकान होय सो विविक्त वसतिका साधुनके रहने योग्य होय है "

भगवती आराधना छपी हुई पत्र ९७

स्व० पं० सदासुखजीके कथनसे भी यह बात स्पष्ट है कि मुनिगण शिक्षागृह–पाठशाला विद्यालयोंमें भी रह सक्ते हैं, धर्मशालाओंमें और बाग बगीचेके महल और मकानोंमें भी रह सक्ते हैं। और देवकुल अर्थात् जिनमंदिरोंमें भी रह सक्ते हैं।

और भी प्रमाण

इत्यस्तेयव्रते पंच भावनाः कंदरादिषु।
स्वभावशून्येष्वावासो मुक्तामोचितसद्मसु।

(आचार्य वीरनन्दीकृत आचारसार अध्याय ५ श्लोक ४५)
छपाहुआ पत्र ३३

इस श्लोकका अर्थ जयपुरवाले पं० पन्नालालजी चौधरीने जो किया है वह इस प्रकार है–

"या प्रकार अस्तेय व्रत विषैं भावना पांच हैं, अथवा ये

हूं पांच भावना अस्तेयकी जानना, अर छोडा छुडाया मकान स्वभावकरि शून्य कंदरादिक विखें आवास।"

(लिखित प्रतिसे)

इस ऊपरके श्लोकमें आचार्य वीरनंदीने मुक्त और आमोचित ये दो विशेषण मकानके दिये हैं, मुक्त मकान वह है जो धनी द्वारा स्वयं छोड़ दिया जाय। और आमोचित मकान वह है कि जो उससे खाली करा लिया जाय। इसी बातको हिंदीटीकाकारेन भी छोड़ा छुड़ाया मकान लिखा है। इसका अर्थ हिंदीटीकाकारने बहुत खुलासा कर दिया है। अब इस पर अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

और भी प्रमाण–

मुनियोंके रहनेके लिये मठ बनवा देना चाहिये। और उसका फल मोक्षकी प्राप्ति है ऐसा स्पष्ट विवरण आचार्य पद्मनंदीकृत पद्मनंदिपंचविंशतिकामें है जैसे–

नामापि यः स्मरति मोक्षपथस्थसाधोः
आशु क्षयं व्रजति तद्दुरितं समस्तम्।
यो मुक्तभेषजमठादिकृतोपकारः
संसारमुत्तरति सोऽत्र नरो न चित्रम्।

(पद्मनंदिपंचविंशतिका पत्र ११८ श्लोक १६)

इस श्लोककी हिंदी टीका जो पं० गजाधरलालजीने की है वह इस प्रकार है–

"जो मनुष्य मोक्षार्थी साधुका नाम मात्र भी स्मरण करता है उसके समस्त पाप क्षणभरमें नष्ट हो जाते हैं, किन्तु जो

भोजन, औषधि, मठ आदि बनवाकर मुनियोंका उपकार करता है वह संसारसे पार हो जाता है इसमें आश्चर्य ही क्या ? अर्थात् ऐसे उपकारीकी तो मोक्ष होनी ही चाहिये ।

(पद्मनंदिपञ्चविंशतिका छपी हुई)

कहिये पं० गजाधर लालजी ! शायद आपको जैन शास्त्रों पर तो विश्वास न होगा परन्तु आपको अपने लिखे पर तो विश्वास होना चाहिये। और यदि आप अपने लिखे पर विश्वास करते हैं तो क्या आप मुनियोंके लिये मठ बनवा कर देनेमें कोई हानि तो नहीं समझते हैं ? और मठ ही क्यों ? आपने तो भोजन और औषधि बनवाकर देनेमें भी मोक्षकी प्राप्ति बताई है। सो अब आप इस अपने लिखे पर भी विश्वास करनेके लिये तयार हैं या नहीं ?

और भी प्रमाण—

पठद्भिरनिशं साधुवृंदैराह मनस्विनम् ।
प्रजल्पन्निव यो भव्यैर्व्यभाव्यत समागतैः ॥

(आदि पुराण पत्र २०५ श्लोक १८३)

अर्थ—चैत्यालयमें अनेक मुनियोंके समूह सदा गंभीर शब्दोंसे पाठ करते थे, इसलिये वह चैत्यालय उन शब्दोंसे ऐसा सुशोभित होता था, मानो आये हुए भव्य पुरुषोंसे संभाषण ही कर रहा हो ।

और भी प्रमाण—

कृतयां शुद्धिरिद्धर्धिः प्रविश्य जिनमंदिरम्
तत्रापश्यत् ऋषीन् दीप्ततपसः कृतवन्देनः ॥

(आदिपुराण पत्र २५० श्लो० २७५)

प्रदक्षिणाके बाद उसने ईर्यापथशुद्धि की, अनन्तर जिन मंदिरमें प्रवेश किया तथा अनेक विभूतियोंको धारण करनेवाले उसने वहां भारी तपश्चरण करनेवाले मुनियोंके दर्शन किये, और उनकी वंदना की।

वज्रजंघ जब विवाहके पीछे जिन मंदिरमें गये हैं वहांका ही यह प्रकरण है। आदिपुराणमें जहां जहां जिनमंदिरोंका वर्णन आया है वहां वहां सब जिनमंदिरोंमें मुनियोंके रहनेका वर्णन आया है इससे स्पष्ट रीतिसे यह बात सिद्ध हो जाती है कि पहले जिनमन्दिरोंमें सर्वत्र मुनि निवास करते थे।

इसी महापूत चैत्यालयमें अनेक मुनि रहते थे यह कथन पत्र २५६ श्लोक ३१७ में भी आदिपुराण में आया है—

और भी प्रमाण—

कल्याण कलिते तीर्थे चैत्यगेहे जिनालये।
भूमिगर्भे मठे ग्रामे विवेकिश्रावकाश्रिते॥
विजन्तुकलतागेहे पुलिने चैत्यपादपे।
निवासः प्राक्तनैः प्रोक्तः मुनीनां चित्तशान्तये॥

परमार्थोपदेश ज्ञानभूषण सूरि विरचित श्लोक २६८।२६९।

इसका अर्थ यह है कि—कल्याणयुक्त तीर्थ धर्मस्थानमें, चैत्यालयमें, जिनमंदिरमें भूमिके अधोभागमें अर्थात् किसी मोंहरे वगैरहमें मठमें विवेकी श्रावकोंसे आश्रित ग्राममें, जीव-जन्तुरहित लतामण्डपमें, वापीकिनारेमें चैत्यवृक्षके नीचे, आदि स्थानोंमें मुनियोंका निवास पूर्वाचार्योंने बताया है।

इन श्लोकोंसे भी जिनमंदिरोंमें और ग्राममें तथा मठ वगैरहमें मुनियोंका निवास स्थान स्पष्ट रीतिसे सिद्ध होता है।

इन ऊपरके श्लोकोंमें गांव और मठादिक तथा जिनमंदिरोंमें मुनियोंके निवास करनेका हेतु भी "चित्तशान्तये" दिया है अर्थात् इन स्थानोंमें रहनेसे उनके चित्तमें शांति रह सकती है। अन्यथा क्रूर जन्तु, और अन्य उपद्रव आदि ऐसे कारण कलाप आजकल मौजूद हैं जिनसे मुनियोंके निराकुलता नहीं रह सक्ती भले ही उपसर्ग सहनकर वे हर प्रकारकी आपत्तिका सामना कर सक्ते हैं परन्तु भयानक एवं दुष्ट पुरुषोंके कारण उन्हें वैसे प्रदेशोंमें आजकल शांति नहीं मिल सक्ती, जिनालयादि स्थान उनकी स्थितिके लिये निराकुल और निरापद हैं।

चतुर्थकालमें भी नगर गांवोंमें रहनेका विधान।

ऊपर जितने प्रमाण दिये गये हैं वे तो विशेषतः पंचमकाल कलिकालके लिये विधानरूप है परंतु नीचे लिखे प्रमाण ऐसे दिये जाते हैं जिनसे सदैव चाहे चतुर्थ काल हो या अन्य काल हो गावों और नगरोंमें मुनियोंका रहना सिद्ध होता है देखिये–

(आचार्य महाकलंक देव विरचित राजवार्तिकमूल छपा हुआ पृष्ठ ३३५)

"दीर्घ कालाभ्यस्तगुरुकुलब्रह्मचर्यस्याधिगत बंध मोक्षपदार्थतत्वस्य कषायनिग्रहपरस्य भावनार्पित

मुनेः संयमायतनभक्तिहेतोर्देशान्तरातिथेः गुरुणाभ्य नुज्ञातस्य नानाजनपदव्याहाराव्यवहाराभिज्ञस्य ग्रामे एकरात्रं नगरे पंचरात्र प्रकर्षेणावस्थातव्यमित्येव सयतस्य इत्यादि

इसका अर्थ यह है कि जिन मुनियोंने बहुत काल तक गुरुकुलमें रहकर ब्रह्मचर्यका पूर्ण अभ्यास कर लिया है, बंध मोक्ष पदार्थोंको जान लिया है कषायोंको जीतनेमें जो तत्पर हैं भावनाओंके भानेमें जो सदैव तत्पर रहते हैं, ऐसे मुनिराज तीर्थोंकी वंदना भक्ति करनेके लिये जो देशान्तरोंमें विहार करना चाहते हैं और जो नाना देशोंकी भाषा, वचनचातुर्य आदि व्यवहारोंको भली भांति जानते हैं वे गुरुकी आज्ञा लकर विहार करते हैं परंतु अनेक नगरोंमें और गावोंमें विहार करते हुए भी वे गांवमें एक दिन और एक रात्रि ठहर सकते हैं और नगरमें पांच दिन पांच रात्रि अधिकसे अधिक ठहर सकते हैं आदि ।

यह कोई पचंम कालके लिये ही कथन नहीं है किन्तु सामान्य मुनिचर्या के लिये सार्वकालिक—चतुर्थकालादि सबकाल के लिये सामान्य विधान है । और भी प्रमाण—

एसाही कथन चतुरनुयोगपारंगत महाराज चामुण्डरायने चारित्रसारग्रंथमें किया है देखिये—

संयमायतनादिभक्तिहेतोः देशान्तरातिथेः गुरुणाऽभ्यनुज्ञातस्य नानाजनपदव्याहारव्यवहाराभिज्ञ

स्य ग्राम एकरात्रं नगरे पंचरात्रं प्रकर्षेण अवस्थात व्यमिति० एवं यातस्येत्यादि,,

(मुद्रित ग्रंथ पृ० ५२)

इसका अर्थभी वही है जो ऊपर श्रीराजवार्तिकजीका दियागया है अर्थात् नगरमें पांचदिन पांचरात ठहरना और गांवमै एक दिन एक रात्रि ठहरना मुनियोंकेलिये प्रकर्षतासे विहित है।

और भी प्रमाण—

षट्प्राभृत आचार्य कुंदकुंदविरचित छपा हुआ पृष्ठ १२० गाथा ५६

उपसग्गपरिसहसहा णिज्जणदेसे हि णिच्च अत्थेहि सिलकट्ठे भूमितले सव्वे आरुहइ सव्वत्थ

इसी गाथाकी आचार्य श्रुतसागर रचित संस्कृत टीकामें लिखा हुआ है कि—"सिलकट्ठे भूमितले, शिलायां दृषदि, काष्ठे दारुफलके, भूमितले भूमौ तृणशय्यां,वा सव्वे आरुहइ सव्वत्थ एतानि सर्वाणि, आरोहति उपविशति शेते च सर्वत्र वने ग्रामनगरादौ वा।"

अर्थात् मुनिगण पत्थर पर, काठके तख्ते पर, पृथ्वीमें और तृणके बने हुए आसन पर बैठते हैं और सोते हैं इन्हीं चार प्रकारके आसनों पर वनमें भी बैठते हैं और सोते हैं और इन्हीं आसनों पर ग्राम नगरादिकोंमें भी बैठते और सोते हैं।

इस कथनसे स्पष्ट है कि मुनि ग्राम और नगरोंमें भी निवास करते हैं यादि ऐसा न होता तो उनके बैठने और सोने के लिए ग्राम नगरोंका विधान नहीं करते।

और भी इसी षट्‌ प्राभृतमें १०६ पृष्ठमें ४२ वीं गाथाकी टीकामें लिखा हुआ है कि

"भीमवने भयानकायामटव्यां स्थातव्यं अथवा वसिते वा ग्रामनगरादौ वा स्थातव्यं । नगरे पंच रात्रे स्थातव्यम्, ग्रामे विशेषेण न स्थातव्यम् ।,

इसका अर्थ यह है मुनियोंको भयंकर वनमें ठहरना चाहिये अथवा गांव और नगर आदिमें भी ठहरना चाहिये। परंतु नगरमें पांच दिन पांच रात और गांव म एक दिन और एक रात्रि रहना चाहिये।

इस कथन से यह बात स्पष्टतासे सिद्ध हो जाती है कि जब मुनिगण किसी तीर्थयात्राके लिये अथवा देश देशान्तरोंमें विहार करनेके लिये जब निकलते हैं तब एक नगरमें पांच दिन और पांच राति ठहर सकते, फिर आगेके गांवमें एक दिन रात ठहर सकते हैं फिर आगेके नगरमें पांच दिन रात ठहर सकते हैं इस पद्धतिसे यदि दक्षिण से उत्तर के लिये मुनियोंका विहार हो जैसा कि परम पूज्य १०८ आचार्य श्रीशान्तिसागर संघका श्रीसम्मेदशिखर के लिये हुआ था तो उस अवस्थामें अनेक गांव और नगरोंमें उनका विहार होता रहेगा और मध्यमें यदि चौमासेका समय आजाय तो उन मुनिराजोंको किसी नगरमें चार महीना तक लगातार ठहरना ही पड़ेगा चौमासा विताकर फिर वे उसी पद्धति से गांव और नगरोंमें श्रावकोंके धर्मोपदेश और पात्रको दान का लाभ पहुँचाते हुए वे विहार करते रहेंगे।

अब प्रत्येक बुद्धिमान सोच सक्ता है कि यह वनोंमें रहना कहा जायगा अथवा नगर और गावों में । पांचदिन रातका तो विधान केवल इस लिये है कि एक जगह ठहरनेसे मोहित बुद्धि हो सक्ती है इस लिये उसका सर्वथा निषेध किया गया है परंतु आगमविदित मार्गसे मुनि गण बराबर गांव और नगरोंमें ठहर सक्ते हैं, फिर विशेष धर्म साधनएवं धर्मोत्सव आदि के अवसरों पर एक जगह अधिक ठहरना भी शास्त्रकारोंने बताया है। परंतु सामान्यनियम भी गांव और नगरोंमें ठहरनेका विधायक है।

और यह सामान्य नियम चतुर्थकालवर्ती मुनियोंके लिये भी है। पंचम कालके लिये विशेष विधान आचार्यवर्य पद्मनंदि आचार्यवर्य शिवकोटि आचार्यवर्य देवसेन आदिने मुनियोंके गावों और नगरोंमें रहनेका स्पष्ट रीति से किया ही है।

इसके सिवाय और भी अनेक प्रमाण हैं जिनसे मुनियोंके नगर और गांवोंमें रहनेका विधान मिलता है जैसे—

श्रीराजवार्तिक छपी पृष्ठ ३३५

ग्रामोद्यानाटवीनगरेषु नक्तं दिवा चैकाकिनो निरावरणमूर्तेः,

अर्थात् ग्राम उद्यान (बगीचा) वन और नगरोंमें रात दिन जो एकाकी नग्न दिगम्बर साधु रहते हैं।

एकान्तमें रहनेका अर्थ

जहां मुनियोंके एकान्तमें ठहरनेका विधान लिखा है वहां

सर्वत्र एकान्तका अर्थ वगीचोंके मकान आदि आचार्योंने बताये हैं देखिये-

"एकान्ते-आरामभवनादिप्रदेशे"

(राजवार्तिक छपी पृष्ठ ३३५)

आराम नाम बगीचाका है अर्थात् जो मकानके आसपास बगीचा बनवाते हैं उसी बगीचेसे यहां प्रयोजन है। उद्यान का अर्थ भी षट् प्राभृत में कृत्रिम बन अर्थात् तयार किया हुआ बगीचा लिया गया है देखिये-

(षट् प्राभृत आचार्य कुदकुन्दकृत टीका आचार्य श्रुतसागरकृत पृष्ठ १०६ गाथा नं० ४२ म लिखा है-)

"उज्जाणे-उद्याने-कृत्रिमेवने स्थातव्यं।"

अर्थात् मुनियोंको उद्यानमें अर्थात् तयार किये हुए बगीचेमें ठहरना चाहिये।

चारित्रसारमें भी एकान्तका अर्थ भवनारामादिप्रदेश लिखा गया है, देखिये-

"एकान्ते-भवनारामादि प्रदेश" चारित्रसार छपा हुआ पृष्ठ ५१)

अर्थ-एकान्तमें अर्थात् भवन (मकान) और बगीचा आदि स्थानोंमें यहां पर भवन और बगीचा अलग २ लिये गये हैं।

चौथे कालमें भी मुनिराज महलके पास बगीचेमें ठहरते थे।

चतुर्थ कालमें भी मुनिराज महलके निकट बगीचेमें ठहरते थे. वहीं चौमासा भी करलेते, इसके प्रमाणमें सुकुमाल चरित्रकी हिंदी भाषा देखिये-

"यशोभद्र नामा मुनि तिस सुकुमालके संबोधनेके निमित्त चतुर्मास संबंधी भला योगका ग्रहणके शुभ दिन विषें सुकुमालके निकट उपवनके मध्य शोभायमान उत्तुंग त्रिजगद्वंद्य ऐसा चैत्यालय विखैं आये"

"तिस जिनालयविखें शीघ्र जाय तहां पुण्य रूप अरहंत देवनिके प्रतिबिंबनिका अरु अपना भाई यशोभद्र मुनिराजका पूजन करि प्रणाम करि यशोभद्र सेठाणी ऐसे कहती भई हे नाथ ! मेरे प्राण समान एक ही पुत्र है सो तुम्हारे वचन श्रवण मात्र करि ही तुरत संयम ग्रहण करेगा"

"चार महीने व्यतीत कर तो धीरबुद्धि यशोभद्र मुनि का० शु० १५ के दिन रात्रिके चौथे प्रहर चतुर्मासकी क्रिया करि योगका त्याग किया, ता समय अवधिज्ञाननेत्ररूप करि सुकुमालकुं निद्रारहित जान ताके सम्बोधनेके अर्थ वह यशोभद्र मुनिराज अमृत समान मधुर वाणी करि समस्त त्रैलोक्य प्रज्ञप्तिका वर्णन करिवेका आरम्भ किया।

"तब तिस पद्मनाभ देवकी विभूति सम्पदाके श्रवणमात्र करि सो अवंतीसुकुमाल जातिस्मरण कूँ प्राप्त भया"

"इत्यादिक चितवनते तिस सुकुमालके हृदयविखें काम भोगादिकतें अरु घर दारादि वस्तुतें दुगुणा वैराग्य भया, अहो इस तुंग महलतें कोइ भी उपाय निकसनेकूं दीखै नहीं कैसा है महल दृढ है द्वारानिविखें कपाट जाके ऐसे चिंतवन करता वैराग्य विखें तत्पर भया (भला) तपश्चरणके अर्थ उद्यमी ऐसा बुद्धिमान सुकुमाल निकसनेका उपाय

देखता संता एक वस्त्रनका बींटा देख्या, तातें वस्त्रानि खोंचि परस्पर एक एक वस्त्रनकूं रज्जु समान दृढ बांधि बहुरि महलका दृढ बंधन कारि फिर तिस वस्त्र लम्बाय भूमिपर्यंत लंबा क्षेपण कारि ताहि पकड पुण्यका उदयतें पृथ्वी विखें उतरि यशोभद्र मुनिराजके समीप गया।"

(हिन्दी सुकुमाल चरित्र लिखित पत्र ५५-५६)

इस चौथे कालके कथानकसे यह बात भलीभांति सिद्ध होजाती है कि मुनिराजने ऐसे उद्यान (बगीचे-उपवन) में चौमासा किया था, जिस महलमें अनेक रानियां और उनके पति सुकुमाल रहते थे गृहस्थाश्रमके इतने निकटवर्ती चैत्यालयमें मुनिराज ठहरे थे कि जहांसे उनका पाठोच्चारण अपने महलमें सुकुमालकुमारने अच्छी तरह सुना और उसे सुनकर उन्हें जातिस्मरण हुआ अंतमें उस महलसे रस्सियोंके सहारे वे उतर कर मुनिराजके चरण निकट पहुंच गये.

इससे वह भी बात सिद्ध होती है कि मुनिराज श्रावकोंके संबोधनके लिये एवं उनका उद्धार करनेके लिये भी गांवों और नगरोंमे अपनी स्थिति रखते हैं।

पाठकोंको यह बात भी ध्यानमे रखना चाहिये कि वे यशोभद्र मुनिराज चारज्ञानके धारी थे और साक्षात् मोक्षगामी थे यह वर्णन भी सुकुमालचरित्रसे जाना जाता है।

विशेष बात यह भी लक्ष्यमें लाना चाहिये कि वे यशोभद्र मुनि चौमासा उस जिनालयमें समाप्त कर भी दूसरे चैत्यालय

में ठहर गये और वहां भी कुछ दिन ठहरे और उन रानियोंको उन्होंने दीक्षा दी, देखिये—

"और यशोभद्र मुनिराजभी तिस जिन मंदिरतें निकसि करि संक्लेशकी हानिके अर्थ कोऊ और जिन मंदिर विषें जाय तिष्ठे"

यहांपर पाठकोंको एक बात और भी ध्यानमें लेना चाहिये कि नगर और गांवोंमें चैत्यालयादि स्थानोंमें मुनियोंका निवास करना अथवा तरुकोटर पर्वतोंकी गुफा आदि जंतुओंसे भरे हुए भयानक वनोंमें निवास करना, दोनों ही मुनियोंके मूलगुण नहीं हैं। मुनिगण कहीं भी रहें उनके अठ्ठाईस मूल गुणोंमें कोई बाधा नहीं आती है जैसे जङ्गलोंमें निवास करनेसे मूलगुण पलते हैं वैसे ही गांवों और नगरोंमें भी रहनेसे पलते हैं परंतु इतना विशेष अवश्य है कि घोर तपश्चर्या एवं शुक्लध्यानकी प्राप्तिके लिये तो अटवी वन, पर्वतकी कंदरा आदि स्थान ही विशेष साधन हैं। परंतु वे साधन उन्हीं महर्षियों द्वारा साध्य किये जाते हैं जिनका संहनन उत्तम है जो छः महीनेतक निराहार रहकर कायोत्सर्ग ध्यानमें निमग्न रह सकते हैं। आजकल शुक्ल ध्यानकी प्राप्ति नहीं होती इस सम्बन्धमें नागसेन मुनिराज तत्त्वानुशासनमें कहते हैं—

अत्रेदानीं निषेधन्ति शुक्लध्यानं जिनोत्तमाः।
धर्म्यध्यानं पुनः प्राहुः श्रेणीभ्यां प्राग्विवर्तिनाम्॥

श्लोक ८३

अर्थात् आजकल जिनेंद्र भगवान् शुक्लध्यानका निषेध

करते हैं। परंतु धर्म्यध्यान आजकल होता है जो कि उपशम व क्षपक श्रेणीके पहले सातवें गुणस्थानतक पाया जाता है। वर्तमान हीनातिहीन संहननसे उस उच्चकोटिकी महत्पात्रताका होना इस कलिकाल जैसे द्रव्य क्षेत्रादि साधनोंमें सर्वथा अशक्य है। इसीलिये परम पूज्य आचार्योंने वर्तमान कलिकाल और हीनसंहनन आदि हेतुओंसे मुनियोंका निवास गांवों और नगरोंके चैत्यालयादि स्थानोंमें बताया है। आचार्यवर्य सोमदेवसूरि कहते हैं—

काले कलौ चले चित्ते देहे चान्नादिकीटके॥
एतच्चित्रं यदद्यापि जिनरूपधरा नराः॥

अर्थात् यह कलिकालका तो समय है चित्त चलायमान रहता है, शरीर अन्नादिकका कीड़ा बन गया है ऐसे हीन समयमें भी मुनिरूपके धारण करनेवाले साधु पुरुष उपलब्ध होरहे हैं यही आश्चर्य है।

वर्तमानमें मुनिरूपधारी साधुओंकी प्राप्ती होरही है इसपर महान्आश्चर्य करते हुएभी आचार्यवर्य सोमदेव आगे क्या कह रहे हैं सोभी देखिये—

यथा पूज्य जिनेंद्राणां रूपं लेपादिनिर्मितम्।
तथा पूर्वमुनिच्छायाः पूज्याः सम्प्रति संयताः।
यशस्तिलक चम्पू पत्र ४०५)

अर्थात् जिसप्रकार पाषाणादिकी बनाई हुई जिनेंद्र भगवानकी मूर्ति पूज्य है उसीप्रकार वर्तमानमें भी मुनिगण पूर्वकालीन चतुर्थकालीन मुनियों के समान पूज्य हैं।

जो लोग वर्तमान समयको ध्यानसिद्धिका काल नहीं समझते हैं उनके लिये मुनिराज नागसेन कहते हैं—

येऽत्राहुर्नहि कालोयं ध्यानस्य ध्यायतामिति ।
नेऽर्हन्मतानभिज्ञत्वं ख्यापयन्त्यात्मनः स्वयम् ॥

पत्र ८ श्लोक ८३)

अर्थात् जो लोग यह कहते हैं कि ध्यानकरनेका यह काल नहीं है वे लोग अर्हन्नमतको (जैन सिद्धान्तको) कुछ नहीं समझते हैं इस अपनी मूर्खता को प्रगट करते हैं। अस्तु,

वर्तमान समयमें मुनिगण जिनमंदिर आदि स्थानोंमें ही रहकर निराकुलतासे धर्म साधन करसक्ते हैं, इस विषयमें चर्चासागर ग्रंथमें सिर्फ पद्मनंदि आचार्य और शिवकोटि आचार्यके दो प्रमाण दिये हैं ग्रन्थकारने अपनी निजी सम्मतिसे उस संबंध में एक बातभी नहीं लिखी है ऐसी दशामें इस १९ वीं चर्चाको पर्चेमें सबसे पहला स्थान देकर जो झांझरीजीने चर्चासागर ग्रंथको अप्रमाणिक एवं अमान्य ठहरानेका ढंढोरा समूचे समाजमें पीटा है वह कितना निंद्य और शास्त्राज्ञालोपक प्रयास है इसका पाठकगण स्वयं विचार करें, या तो झांझरीजी अथवा उनके समर्थक भाई आचार्य पद्मनंदि, आचार्य शिवकोटीके कथनको अमान्य ठहरावें नहीं तो चर्चासागर की इस चर्चाके विषयमें जो उन्होंने "समस्त शास्त्रोंकी मान्यता तो यही है कि मुनि वनमें ही रहें" यह सर्वशास्त्रोंकी जानकारीका दावा ठोंककर जो चर्चासागर ग्रंथको

उपहास और उसकी अमान्यता बताई है उसके लिये बहुत बड़ा प्रायश्चित और पश्चात्तापके साथ उन शब्दोंको प्रगट रूपमें वापिस लेकर अपनी इस चर्चाके विषयमें भूल जाहर करदें।

गोमय (गोवर) शुद्धि विचार।

चर्चासागरकी १५२ वी और १५५ इन दो चर्चाओंके विषयमें झांझरीजीने यदि कोई अपने "धर्मविध्वंसक कुचेष्टा" चर्चा नं० १५२ नामक पर्चेमें लिखा है कि–

"दूब दाभ मिट्टी गोवर (गोमय) सोना चाँदी तिल सालि जौ आदि मंगल द्रव्य हैं सो पूजाके समय भगवान्के आगे अर्घ उतार कर चरणोंके आगे चढाना चाहिये" य वाक्य तो उन्होंने चर्चासागरके बतलाकर कामाके भीतर लिखे हैं।

अब झांझरीजीके निज वाक्य सुनिये [गोबरसे भगवानकी आरतीका विधान बतलाना बडी शर्म और लज्जाकी बात है, गोबर आखिर पशुकी भिष्ठा ही तो है ऐसी अपवित्र चीजसे भगवानकी आरती करना बतलाना पल्ले दर्जेकी जुआ चोरी है, जैन सिद्धान्तके घोर विरुद्ध है]

चर्चा नं० १५५ "गीला गोवरका पिंड और दूब आदिसे आरती करता हूं वे भगवान मेरे आठों कर्मोंको नष्ट करें।" ये वाक्य तो कामाके भीतर चर्चासागरके रक्खे गये हैं।

अब झांझरीजीके निजी वाक्य सुनिये–

[धर्म डूबा धर्म डूबाका होहल्ला मचानेवाले कहां हैं भगवानकी गोबरसे पूजाका विधान करनेसे क्या धर्म नहीं डूबता है ? आश्चर्य है कि ऐसे खोटे विधानोंका कोई पंडित विरोध नहीं कर रहा है क्या इससे धर्मके उद्धार होनेकी आशा है क्या यह आर्षप्रणीत ग्रंथोंके अनुकूल है ? धिक्कार है]

सबसे पहले पाठकोंको झांझरीजीके निजीवाक्यों पर ध्यान देना चाहिये, उन्होंने "बडी शर्म, लज्जा, पल्लेदर्जेकी जूआ चोरी धिक्कार आदि शब्दोंका प्रयोग किया है किनके लिये? उन महर्षियोंके लिये जिन्होंने गोवर शुद्धि वताई है और उसकी आरतीका विधान बताया है, यदि "पल्ले दर्जेकी जूआ चोरी" जैसे शब्द या गालीके वचन किसी साधारण पुरुषके लिये कोई भी प्रयोग करै तो वह उसे बडे घरकी हवा खिलाये विना कभी न छोड़े साथ ही ऐसे कुवचन कहनेवालेको हर कोइ महा असभ्य और हीन पुरुष समझेगा।

पल्ले दर्जेका जूआ चोर उसे ही कहा जाता है जो अव्वल नम्बरका ठग होता है, और ऐसे ही पुरुषको धिक्कार दी जाती है क्या गोवर शुद्धि या उसकी आरतीका विधान करनेवाले आचार्योंने धार्मिक समाज या जैनियोंके साथ भारी ठगीका काम किया है ? हमें बहुत दुःख होता है कि समाजमें आज कोई नायक, या उत्तम संगठन नहीं है, अन्यथा झांझरीजी जैसे विवेक शून्य आर्किचित्कर प्राणी ऋषियोंके लिये

ऐसे कुवचनोंका प्रयोग करनेका भारी दुःसाहस क्या कभी कर सक्ते थे ? परन्तु आज कल ऐसा कुसमय आ गया है कि मुख और लेखनी दोनों वे लगाम हैं और हृदयमें धर्मकी आस्था और पाप वचनका भय नहीं है इसलिये चाहे जो चाहे जिसके लिये कहा जाय या लिखा जाय, कुछ कही पूंछ ताछ नहीं है।

यदि झांझरीजी कहें कि ये जूआ आदि चोरी धिक्कार आदि शब्द उन्होंने चर्चासागर बनाने वाले स्व०पं० चंपालालजी के लिये कहे हैं ऋषियों के लिये तो नहीं कहे हैं तो यह कहना भी उनका बनता नहीं है क्योंकि उन्होंने तो गोवर शुद्धि और उसकी आरतीका विधान बतलाने को पहले दर्जे की जूआ चोरी बताई है स्व० पं० चंपालालजीने तो कुछ अपनी ओर से विधान किया नहीं है उन्होंने तो इस गोवर शुद्धि और आरतीके बारेमें अपनी ओर से कुछ भी नहीं कहा है नं० १५२ की चर्चामें केवल 'शान्तिचक्रपूजा, का एक श्लोक प्रमाणमेंलिखा है और एक चरन लघुस्नपन श्लोकका लिखा है, तथा नं० १५५ की चर्चामें आठ प्रकार की नीराजनाका उल्लेख पूजासार बृहत्स्नपनके आधार पर किया है। पाठक ! चर्चासागर की इन दोनों चर्चाओंको खोल कर देखलें पं० चंपालालजीने एक बात भी निजी सम्मतिसे नहीं कही है, फिर झांझरीजी द्वारा कहे गये कुवचन पूजासार और जिन्होंने गोवर शुद्धि और उसकी आरतीका विधान किया है उन ऋषियोंके लिये ही कहे गये

हैं, यह बात झांझरीजीके वाक्यों से ही सिद्धि होती है। झांझरी-जीके शास्त्र रचयिता ऋषियोंके प्रति कैसे भाव हैं, और कहां तक उनकी सभ्यता बढ़ी हुई है इस पर हम विचार न करके—

उन्होंने जो अपनी निजी सम्मति द्वारा यह बात प्रगट की है कि—

"जैन सिद्धान्त के घोर विरुद्ध है आश्चर्य है कि ऐसे खोटे विधानोंका कोई पंडित विरोध नहीं करता है क्या यह आर्ष प्रणीत ग्रंथों के अनुकूल है? गोवर आखिर पशुकी भिष्टा ही तो है ऐसी अपवित्र चीजसे भगवानकी आरती बतलाना आदि" हम इन झांझरीजीकी पंक्तियोंको पढ़कर इतना कहना उचित समझते हैं कि—

झांझरीजी बिचारे संस्कृत तो पढ़े ही नहीं हैं इसलिये शास्त्रोंमें क्या है सो तो समझते ही नहीं हैं और वे भाषा शास्त्रोंके भी जानकार नहीं हैं जिससे जैन सिद्धान्तकाभी उन्हें कुछ बोध नहीं है, परंतु लोक व्यवहार तो समझते हैं फिर उन्होंने गोवरको भिष्टा किस प्रकार कह दिया? कमसे कम गोवरके विषयमें इतना मिथ्या भावग तो उन्हें नहीं करना था कि जिसे नीचेसे ऊपरतक सभी लोग लोकमें पवित्र मानते हैं परंतु असल बात तो यह है कि आज इस निमित्त से तेरह वीस पंथमें फूटका बीज बोना है, और शास्त्रोंको अप्रमाण ठहरानेकी पूरी चेष्टा करना है इसलिये चर्चा-

सागरकी चर्चाओंको लेकर यह आंदोलन उठाया जा रहा है।

गोबर शुद्ध है या अशुद्ध।

गोबर शुद्ध है या अशुद्ध इस पर लोकमत और शास्त्र मत क्या है इसीका खुलासा कर देना ठीक है।

लोकमें तो गोबर सर्वत्र शुद्ध और पवित्र माना जाता है, देखिये—

(१) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य, इन सभी उच्चकुलोंमें तथा दि० जैनियोंमें भी गोबरसे आंगन (मकानके भीतरका चौक) लीपा जाता है, गोबरके साथ पीली मिट्टी भी मिलाई जाती है।

गोबर मिट्टीसे मकानोंके भीतर लीपनेकी पद्धति (रिवाज) मारवाड़, यू० पी०, सी० पी०, बंगाल, पंजाब, दक्षिण आदिमें सर्वत्र है।

(२) यदि बच्चा कहीं घरके उच्च प्रदेशमें पेशाब या शौच (टट्टी) कर बैठे तो उस क्षेत्रकी शुद्धि गोबरसेही की जाती है।

(३) अनेक स्थानोंमें गोबरसे रसोई बनानेकी चूल भी लीपी जाती है। यह (रिवाज) भी अधिकांश रूपमें प्रचलित है।

(४) यदि सूतक पातक आदि कोई भी अशुद्धि घरमें हो जाय तो उसकी शुद्धता गोबरसे उस घरको लीप कर ही की जाती है।

बम्बई कलकत्ता जैसे विशाल शहरोंमें टायलोंके मकान होने से भले ही वहां धोकर ही सफाई करदी जाती है परंतु वहां रहने वालोंको अपने २ गांवों और नगरोंकी व्यवस्था देखनी चाहिये, खासकर जहां पर कच्ची जमीन और दीवालोंके मकान हैं वहां पर तो विना गोवरके और प्रकार शुद्धिका मार्ग ही नहीं है। वहां गोवरका ही सदा उपयोग होता है।

(५) दाक्षिण प्रान्तमें तो कोइ ऐसा घर नहीं है जिसमें भीतरसे लेकर बाहर तक मिट्टी और गोवरसे शुद्धि नहीं की जाती हो।

वहां पर तो जिन रईसोंके पक्के मकान रहते हैं उनके यहां भी कुछ स्थान कच्चा ही रक्खा जाता है जिसे प्रतिदिन गोबरसे शुद्ध करते हैं।

(६) गोबरके कंडों (सूखा गोबर) पर लोग बाटियां और चूरमा बनाकर खाते हैं यह रिवाज प्रायः सर्वत्र है खास कर मारवाड़ और मालवा प्रान्त तो चूरमा वाटियोंके लिये प्रसिद्ध है।

(७) विवाह उत्सव आदि अवसरों पर गोबरसे लीपकर चौक पूरा जाता है। जहां वर वधूके बिठानेके काष्ठासन (पट्टे) रक्खे जाते हैं उस जमीनको पहले गोबरसे उसी समय लीपते हैं बिना गोबरसे लीपे वह क्षेत्र पवित्र एवं मांगालिक नहीं समझा जाता है।

इत्यादि अनेक कार्योंसे यह बात भली भांति सिद्ध है कि

लोकमें खासकर दि० जैनियोंमें भी सर्वत्र गोबर पवित्र और मांगलिक द्रव्य समझा जाता है।समझा जाता हो इतनाही नहीं किंतु राति दिन व्यवहारमें (काममें) लाया जाता है।

ऐसी दशामें गोबरको भिष्टा बताना किसी प्रकार भी उचित नहीं कहा जा सकता है। जो लोग झांझरीजी और उनके जैसे समर्थक महाशय गोबरको भिष्टा कहकर अपविंत्र कह कर समाजको अमर्यादित शब्दोंसे भी भड़कानेका-प्रयत्न कर रहे हैं वे क्या गोबरसे लिपे हुए घरोंमें कभी नहीं जाते हैं या नहीं रहते हैं ? और क्या गोबरकी आगपर सिकी दाल वाटी चूरमा नहीं खाते हैं।

(८) यदि मनुष्यकी भिष्टापर किसीका पैर पड़ जाय तो हरएक उच्च वर्णवाला मनुष्य स्नान करता है। भिष्टासे स्पर्श होजानेपर स्नानही नहीं किंतु सचेल (सवस्त्र) स्नान करनेका विधान है, और लोग वैसा करते भी हैं परंतु गोवरको छूकर न तो स्नान करनेका विधान ही है और न लोग गोवरमें पैर पड़जानेसे स्नान करते ही हैं।

जिस गोवरसे होमादि कुंड और विवाह क्षेत्र आदिस्थान पवित्रित और मांगलिक बनाये जाते हैं उसके स्पर्शसे अशुद्धि के लिये जगह ही नहीं है फिर स्नान कैसा ?

झांझरीजीने जो मनुष्योंकी भिष्ठाके समान ही आखिर पशु की भिष्ठा ही गोवर है,ऐसी समानता दिखलाईहै सो ठीक नहीं है,दोनोंके भोज्य उनके खल रस भाग के परिगमन एवं वस्तु

स्वरूपमें भेद होनेसे उनकी ग्राह्यता अग्राह्यतामें बहुत बड़ा अंतर है। अस्पृश्य मनुष्य को छूकर स्नान करना पड़ता है, उस के घड़े के जलको छूकर भी स्नान करना पड़ता है परंतु पशुको छूकर स्नान नहीं किया जाता है प्रत्युत उसके उदरसे निकाला हुआ दूध पवित्र होनेसे मुनिगणके लिये भी पेय है (पीने योग्य है) इस लिये दोनों की किसी प्रकार समानता नहीं होती है।

मनुष्यकी भिष्टा पर रक्खी हुई वाटी या रोटी कोई छूभी नही सक्ता परन्तु सूखे गोवर की आग पर तो प्रतिदिन रसोई बनाई जाती है और उसके लिये प्रतिदिन गोवर के कंडे सुखाये जाते हैं, इस लिये गोवर को भिष्टा और अपवित्र कहना सर्वथा अनुचित है।

यह लोकव्यवहार-गोवरको पवित्र माननेका व्यवहार, इस शुद्धताका विचार रखनेवाले भारतमें सदैवसे प्रचलित हैं यह व्यवहार निर्मूल नहीं है, शास्त्रकारोंने भी गोवरको पवित्र बतलाया है।

दिगम्बराचार्य भी गोवरको पवित्र बनाते हैं।

देखिये—

आचार्यवर्य सोमदेव यशास्तिलक चम्पू ग्रंथमें शुद्धिविधान-में लिखते हैं—

(छपी पुस्तक पत्र ३७२ श्लो ११)

मृत्स्नयेष्टकया वापि भस्मना गोमयेन च।
शौचं तावत्प्रकुर्वीत यावन्निर्मलता भवेत्॥

अर्थ–मिट्टीके द्वारा, ईंट (पिसी हुई) के द्वारा, भस्म (राख) के द्वारा और गोमय (गोवर) के द्वारा वहांतक शुद्धि करनी चाहिये जहांतक कि निर्मलता आ जाय।

तबतक करनेका खुलासा यह है कि मिट्टीसे हाथ एकवार धोनेसे पूर्ण शुद्धि नहीं होती है किंतु तीनवार धोनेसे ही शुद्धि मानी गई है इसीप्रकार सर्वत्र शुद्धि विधान समझना चाहिये।

इस श्लोकमें गोवरको शुद्ध माना है तभी तो उसके द्वारा शुद्धि बताई है। यदि वह अशुद्ध और भिष्टा समझा जाता तो इतने उद्भट आचार्य प्रवर उसका विधान कैसे करते ?

गोवर शुद्धिका दूसरा प्रमाण।

श्री आचार्यवर्य अकलंक देव श्रीराजवार्तिकमें लिखते हैं–

"शुचित्वं द्विविधं लौकिकं लोकोत्तरं चेति. तत्रा-त्मनः प्रक्षालितकर्ममलकलंकस्य, स्वात्मन्यवस्थानं लोकोत्तरं शुचित्वं तत्साधनं सम्यग्दर्शनादि तद्वन्तश्च साधवः तदधिष्ठानानि निर्वाणभूम्यादीनि यत्प्राप्त्युपायाच्छुचिव्यपदेशमर्हन्ति.

लौकिकशुचित्वमष्टविधम्–

काल–अग्नि–भस्म–मृत्तिका–गोमय–सलिल–ज्ञान–निर्विचिकित्सत्वभेदात्"

राजवार्तिक मुद्रित पत्र ३२८

इसका अर्थ यह है कि शुद्धि दो प्रकारकी है, एक लौ-

किक शुद्धि और दूसरी अलौकिक शुद्धि। उनमें जो कर्म-मलकंलकरहित आत्माका अपने निज स्वरूपमें ठहर जाना है वही अलौकिक शुद्धता है। उसका साधन सम्यग्दर्शनादिक है तथा सम्यग्दर्शनादि धारण करने वाले साधु गण हैं। और उनके आधारभूत निर्वाण क्षेत्र आदि हैं क्योंकि इन सब साधनोंसे उस शुद्धताकी प्राप्ति होती है इसलिये ये भी शुद्ध हैं-

लौकिक शुद्धता आठ प्रकारसे होती है (१) कालशुद्धि (२) अग्निशुद्धि (३) भस्मशुद्धि (४) मृत्तिका (मिट्टी) शुद्धि (५) गोमय (गोबर) शुद्धि (६) सलिल (जल) शुद्धि (७) ज्ञान शुद्धि (८) निर्विचिकित्सत्व (ग्लानिरहितता) इस प्रकार शुद्धिके आठ भेद हैं इनमें जैसे जलशुद्धि मानी है उसी प्रकार मिट्टीशुद्धि और गोबरशुद्धि भी मानी है।

और भी गोवरशुद्धिमें प्रमाण।

महाराज चामुण्डराय चारित्रसारमें लिखते हैं-

"लौकिकं शुचित्वं-कालाग्निभस्ममृत्तिकागोमयस-लिलज्ञाननिर्विचिकित्सत्वभेदादष्टविधम्"

अर्थात्-काल, अग्नि, भस्म, मृत्तिका, गोमय (गोबर) जल, ज्ञान, निर्विचिकित्सा, इन भेदोंसे लौकिक शुद्धि आठ प्रकार है।

और भी प्रमाण गोबर शुद्धिमें

आचार्य विद्यानंदि (पात्रकेसरी) श्रीश्लोक वार्तिकमें लिखते हैं-

तेन सामान्यतोऽदत्तमाददानस्य सन्मुनेः ।
सरिन्निर्झरणाद्यंभः शुष्कगोमयखण्डकम् ॥ २ ॥
भस्मादि वा स्वयं मुक्तं पिच्छालाबूफलादिकम् ।
प्रासुकं न भवेत्स्तेयं प्रमत्तत्वस्य हानितः ॥ ३ ॥

(श्लोक वार्तिक पृष्ठ ४६३)

अर्थ—नदीके झरने आदिका जल, सूखे गोवरका टुकडा (कंड़ा-उपला), भस्मादिक तथा अपने आप मयूर द्वारा छोडी हुई उसकी पिच्छलें (डरीरें) और सूखी तूंबी आदि जो प्रासुक चीजें हैं वे यदि किसीके द्वारा विना दी हुई हैं, उन्हें भी ग्रहण करनेवाले जो श्रेष्ठ मुनि हों तो उन मुनि-राजको प्रमाद योग न होनेसे चोरीका दोष नहीं लगता है।

यहां पर सूखे गोवरका ग्रहण करना शुद्धि आदिके लिये मुनियोंको भी बताया गया है।

और भी गोवर शुद्धिमें प्रमाण—

श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचारकी टीकामें स्व० पं० सदा-सुखजी लिखते हैं—

आलौकिक शौचपना है सो अष्टप्रकार है—

"कालशौच, अग्निशौच, भस्मशौच, मृत्तिकाशौच, गोमय-शौच, जलशौच, पवनशौच, ज्ञानशौच ये आठ शौच शरीरके पवित्र करने कूं समथ नहीं है। लौकिक जनोंके व्यवहार छोडैं वडा अनर्थ हो जाय, हीन आचारकी ग्लानि जाती रहै तो समस्त एक हो जाय, तादि परमार्थ हूँ नष्ट हो जाय, यातें

अनादि कालतें बाह्य शुचिताकी मानता देखि मनकी ग्लानि मैंट ले हैं"

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार छपा हुआ पत्र २४)।

इन पंक्तियोंमें गोवर और मिट्टीको भी शुद्ध माना है उनसे अन्य पदार्थोंकी शुद्धि बताई है।

यहां पर अशुचि भावनाका वर्णन है इसलिये लिखा है कि शरीर तो स्वभावसे ही अशुचि है उसे व्यवहारमें माने हुए शुद्ध पदार्थ भी शुद्ध नहीं कर सकते हैं।

स्व० पं० सदासुखजीने इस व्यवहार शुद्धिको अनादि कालसे बताया है, और उसके विना हीन आचार और उच्च आचारका भेद मिट जायगा ऐसा भी कहा है, और परमार्थ भी नष्ट हो जायगा ऐसा भी कहा है।

पं० सदासुखजी और भी लिखते हैं—

" लौकिक शौच परिणामनिकी ग्लानि मेटै है, व्यवहारमें उज्वलता जानि कुलकी उच्चता जनावै है"

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार पत्र २४)

आगे वे और भी लिखते हैं—

" अष्ट प्रकार शौच लौकिकमें अनादिका प्रवर्त है यातें आगमकी आज्ञा मानना अपना हित है, बहुरि जगतमें प्रगट देखिये हैं कर्णके मलतें नेत्रमल कूं, अर यातें नासिका मल कूं, यातें कफ लालादिक मुखके मलकूं, यातें मूत्र कूं, यातें विष्टा कूं, अधिक अधिक अशुचि मानिये हैं। अर जो समस्त

मल कूं समान ही मानिये तो समस्त आचार उपद्रित होय विपरीत होय जाय"

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार पत्र २६ व २७) ।

झांझरीजीने जो अपने पर्चेमें गोवरको भिष्टा कह कर जो शास्त्र विरुद्ध बोलनेकी झांझरी बजाई है उसे रोक कर वे अपने कान खोलें और रत्नकरण्ड श्रावकाचारकी ऊपरकी पंक्तियोंको पढ़ल इन पंक्तियोंमें कान नासिका आदिके मलसे बहुत बढ़कर अपवित्र भिष्टाको बताया गया है, परन्तु गोवरको पवित्र बताया गया है । उसे आठ शुद्धियों में गिनाया गया है, साथही यह भी कहा गया है कि आगम-की आज्ञा माननेमें ही अपना हित है।

अब झांझरी जी स्वयं सोचें कि गोवर को भिष्टा कहना आगम की आज्ञा है या उस आज्ञाका सर्वथा लोप है क्या झांझरीजीने अब तक हिंदीभाषाके इस रत्नकरंड श्रावकाचार का भी स्वाध्याय नहीं किया है ? यदि किया है तो फिर धर्मात्मा समाजकी आखोंमें इतनी धूल उन्होंने क्यों डाली है यह समाजको ठगना और शास्त्रोंकी आज्ञाका लोप करना नहीं है ?

पं० सदासुख जी गोवरशुद्धिको आगे भी लिखते हैं—

"लौकिक शुचि अष्ट प्रकार हैं कोऊ कालशौच जो जो प्रमाणिक काल व्यतीत भये लोकमें शुचि मानिये है कोऊ (पदार्थ) अग्नि करि संस्कार स्पर्शन करि शचि मानिये

है कोई कूं पवन करि, कोऊकूं भस्मते माजने करि कोऊ कूं मृत्तिकातें कोऊकूं जलतें, कोऊ कूं गोमय (गोवर) तें कोऊ ज्ञानमें ग्लानि मिट जाने तें लौकिकजन मनमें शुचि पनाका संकल्प करे हैं,,(रत्नकरण्डश्रावकाचार छपा पत्र२३३)

इन पंक्तियों से स्पष्ट सिद्ध है कि जिस प्रकार जल शुद्धि मानी गई है उसी प्रकार गोवर और मिट्टीसे भी शुद्ध मानी गई है जिस प्रकार जल शुद्ध है उसी प्रकार गोवर और मिट्टी भी शुद्ध और पवित्र है।

गोमय-पूजा या गोमय आरती ?

पहली बात तो पाठकों को यह बात ध्यानमें रखना चाहिये कि चर्चासागरमें गोमय (गोवर) से पूजा करनेका कहीं भी विधान नहीं बताया गया है, किंतु झांझरीजीने समाज को एक पद छिपाकर धोखा दिया है उन्होंने १५२ वीं चर्चामें जहां कोमा के भीतर चर्चासागर की पंक्तियां रक्खी हैं वहां उन्होंने उन पाक्तियों में लिखा है कि "भगवान के आगे अर्घ उतार कर,, यह वाक्य चर्चासागर का नहीं है चर्चासागर का वाक्य यह है कि "भगवान के आगे अर्घ के समान उतार कर,, यहां पर झाझरी जी ने " समान " पदको उड़ा दिया है और जनता को यह समझाना चाहा है कि देखो चर्चासागर में गोमयका अर्घ बताया है ? परंतु"समान"पदके लगने से यह अर्थ खुलासा हो जाता है कि जितनी मंगल द्रव्य मानी गई हैं उन सब को अर्घके समान इकट्ठा कर उनकी आरती उतार कर उसे भगवानके चरणोंके आगे रख देना

चाहिये। चर्चासागरमें गोवर से पूजा का विधान कहीं भी नहीं बतलाया गया है केवल गोमय सरसों आदिसे भगवान की आरती उतारनेका विधान बताया गया है।

पाठकों को यह भी समझ लेना चाहिये कि पूजा में और आरती में बहुत भारी भेद है। पूजाकी द्रव्य पूजा का अष्टक पूजा का ओं ह्रीं आदि मंत्र, पूजा का फल, ये सब जुदे हैं और आरती की द्रव्य, आरतीका पद्य आरतीका मंत्र आरती का फल ये सब बातें जुदी हैं। पूजा और आरतीमें बहुत बड़ा अंतर है। दोनोंमें क्या अंतर है उसे संक्षेपमें हम यहां प्रगट कर देते हैं पूजामें जल गंध अक्षत पुष्प नैवेद्य आदि द्रव्य आते हैं, आरतीमें दूब, सरसों, धान्य, हलदी, गोमय आदि मंगल द्रव्योंकी मुख्यता है। इसीप्रकार मंत्रादि और फलोंमें भेद है। नीराजना नाम आरतीका है।

आरती मङ्गलकामनाके लिये भी उतारी जाती है आरती दृष्टिदोष वारण (नजर उतारने) के लिये भी की जाती है आरती हरएककी उतारी जा सकती है परंतु अष्टद्रव्यसे पूजा हरएककी नहीं की जा सकती, हरएककी पूजा करनेसे मिथ्यात्वका दूषण आता है। आरती करनेमें दूषण कुछ नहीं आता है।

देखिये—विवाहके समय जब सासु वरको घरपर आते हुए देखती है तब सबसे पहले वह उसकी आरती उतारती है यथा—

आर्द्राक्षतारोपणमुत्तमांगे कृत्वाश्रियं कांचनवर्धयित्वा।
नीरांजनां सर्षपपुष्परत्नदूर्वाक्षतैर्दीपगणैःकरोतु।

विमाहपद्धति छपी हुई पत्र १६ श्लोक ९१

अर्थात् भीगे हुए चांवल तो वरके उत्तमअङ्ग मस्तकपर लगाकर और विशेष शोभाको बढ़ाकर सरसों, पुष्प,रत्न, दूब, अक्षत, दीप इन द्रव्योंसे वरकी आरती सासू करें।

इसी प्रकार राजकुमार और राजाओंकी भी आरती उतारी जाती है, सुकुमालकी माताने सुकुमालकी भी आरती उतारी थी।

परंतु पूजा न तो कोई देव शास्त्र गुरुके सिवा किसी की करेगा ही, और न कोई करावेगा ही, तथा आरती में जो सरसों दूर्वा आदि द्रव्य लिये गये हैं वे पूजाष्टक में नहीं लिये गये हैं। इस लिये आरती और पूजा में बहुत भेद है।

आरती मंगल द्रव्यों से की जाती है, सरसों, दूब, धान्य अक्षत दीप गोमय आदि द्रव्यों को मंगल द्रव्य बतलाया है लोक में भी अर्थात् मंगल रूप ही इन द्रव्यों को समझा जाता है और कार्य लिया जाता है।

ऊपर जो प्रमाण दिये गये हैं उन प्रमाणों से गोमय पवित्र द्रव्य है यह बात भली भांति सिद्ध हो चुकी है और गोवर सरसों दूर्वा आदि मंगल द्रव्य हैं यह भी शास्त्रकारा ने कहा ही है। इसलिये आरती में अन्य सरसों आदि के साथ गोवर को भी लिया गया है। यदि शास्त्रकारों के

मन से गोवर अपवित्र और विष्ठा समझा जाता तो वे ऐसी वस्तु का कभी विधान नहीं करते। परंतु शास्त्रकार उसे पवित्र और मंगल द्रव्य कहते हैं इसलिये उसका ग्रहण आरती में आता है।

गोवर से आरती भगवान की उतारी जाती है, इसे सुनकर हमारे अनेक धर्मात्मा बंधु भी क्षुब्ध हो उठते हैं, उनका ऐसा होना असंगत भी नहीं कहा जा सक्ता, कारण उनके सामने यह एक नया विषय है, नया विषय होने से ही हमारे भाइयों को क्षोभ नहीं करना चाहिये किंतु जहां आगम का घात होता हो वहां क्षोभ करना ठीक है। परन्तु जहां आगम की आज्ञा हो वहां उसे श्रद्धा भाव से ग्रहण करना चाहिये अन्यथा दूषण आता है।

गोवरके साथ आरती हमने भी नहीं की है परंतु उस शास्त्राज्ञाका हम निषेध नहीं कर सक्ते हैं

यद्यपि गोवरके साथ आरती करनेका प्रसंग हमे भी अभीतक नहीं आया है, फिरभी गोवर, सरसों दूर्वा आदिके साथ भगवान की आरती करनेका प्रसंग प्रतिष्ठाचार्योंको एवं प्रतिष्ठाकारकोंको अवश्य आया होगा, क्योंकि सभी प्रतिष्ठापाठोंमें आचार्योंने उन द्रव्योंसे आरतीका विधान किया है। और जहां गर्भसे लेकर मोक्ष कल्याणक तक समस्त क्रियायें भगवानकी बताई जाती हैं वहां आरतीका प्रसंग कई जगह आता ही है। इसलिये उस शास्त्र विहित मार्गको यदि हम नहीं मानते हैं तो आचार्य वाक्योंके उल्लं-

धन करनेवाले सिद्ध होते हैं, इसलिये आगम विदित मार्गका कोई भी श्रद्धावान् पुरुष निषेध नहीं कर सक्ता है, हाँ उस प्रक्रिया वा विधिको वह करै या नहीं करै यह उस व्यक्तिकी इच्छापर निर्भर है! अनेक विषय शास्त्रोंमें ऐसे बताये गये हैं जो नैमित्तिकरूपसे विशेष २ समयोंमें ही वे किये जाते हैं तो क्या हम उनका निषेध करदें! प्रतिष्ठा की विधि अनेक ऐसी हैं जो प्रतिष्ठाके समयही काम आती हैं इतर समयमें नहीं आती हैं तो क्या हम उनका निषेध करें! व्रतोद्यापनादि विधानोंमें प्रतिदिनकी पूजासे अलग और प्रकारकी सामग्री भी लगती है तो क्या हम उसका निषेध करदें। इसलिये जहां हमें आचार्य वचन प्रमाणमें मिलते हैं वहां हमें निर्विवाद रूपसे वे वचन आज्ञा रूपसे स्वीकार करने चाहिये इसीका नाम व्यवहार सम्यक्त्व है।

गोवरसे आरतीके प्रमाणमें आचार्य वाक्य।

आचार्य श्रीसोमदेवने, यशस्तिलकचंपू शास्त्रमें भगवान जिनेंद्रदेवकी पूजाके प्रकरणमें लिखा है—

देहेस्मिन् विहितार्चने निनदति प्रारब्धगीध्वना—
वातोद्यैः स्तुतिपाठ मङ्गलरवैश्चानंदिनि प्राङ्गणे।
मृत्स्नागोमयभूतिपिण्डहरितादर्भप्रसूनाक्षतै—
रम्भाभिश्च सचन्दनैर्जिनपते नीराजनां प्रस्तुवे।

(यशस्तिलकचम्पू छपा हुआ पत्र (३८३)

अर्थ—जिस समय गीत और वाजोंका जोरसे शब्द हो रहा है, स्तुतिपाठ और मंगलके शब्दोंसे मंदिरका चौक

आनंदमय होरहा है, ऐसे समयमें श्रीजिनेंद्रभगवानके शरीरकी पूजाके विधानमें मैं (पूजा करनेवाला) सबसे प्रथम, मिट्टी, गोमय (गोवर) भस्मपिंड, हल्दी, दूर्वा, पुष्प, अक्षत, तथा चंदनसहित जलसे श्रीजिनेंद्रदेवकी आरती करता हूं।

यह आरती आव्हानन, प्रातिष्ठापन, सन्निधीकरणके पीछे कीगई है, इसके आगे जलादि द्रव्योंसे भगवानका अभिषेक और अष्टद्रव्योंसे पूजन करनेके विधानके श्लोक आचार्य महाराजने लिखे हैं।

प्रतिष्ठापाठोंमें जहां अंकुरार्पण विधि बताई गई है वहां गोवरसे वेदीकी शुद्धि बताई गई है– देखिये–आचार्य नेमिचन्द्र कृत प्रातिष्ठापाठमें लिखा है–

"भूम्यपतितगोमयक्षीरद्रुमत्वक्कषायकन्यकाकर संमार्जितवेदिकास्थलरचितनानाविधरुचिररंगावलि पुष्पोपहारशोभिते"

(प्रतिष्ठा पाठ मुद्रित पत्र ९८)

अर्थ–भूमिमें पड़ा हुआ अधर लिया हुआ गोवर, और दूधवाले वृक्षकी छालके चूर्णसे वेदीको कन्याके हाथसे लीप कर उसे अनेक प्रकारसे रंगवाली वस्तु (रांगोली) और पुष्पोपहारसे सुशोभित।

आरतीके प्रमाणमें–

भूतलापतितगोमयपिण्डैर्दूर्वगुच्छासितसर्षपयुक्तैः
अर्हतोऽवतरणं विदधेहं कर्तुमात्मदुरितौघविलोपम्।

(प्रतिष्ठापाठ मुद्रित पत्र ६७६)

अर्थ—दूबका गुच्छा और सफेद सरसोंको साथ लेकर पृथ्वीमें नहीं पड़े हुए (शुद्ध) गोबरके पिण्डसे श्रीजिनेद्रदेवकी मैं आरती करता हूं जिससे मेरे पाप समूहका नाश हो जाय।

इसके आगे ओं ह्रीं आदि मंत्र है वह यह है—

ओं ह्रीं क्रौं दूर्वांकुरसितसर्षपयुक्तैर्हारितगोमयपिण्डकैर्भगवतोऽवतरणं करोमि दुरितमस्माकमपनयतु स्वाहा"

(प्रतिष्ठापाठ श्रीनेमिचन्द्राचार्यकृत पत्र ६७६)

अर्थ—ओं ह्रीं क्रौं, ये तो मन्त्राक्षर हैं आगे लिखा है कि-दूर्वाके अकुंर और सफेद सरसों सहित हरे (ताजे) गोवर के पिंडसे भगवानकी आरती करता हूं मेरे पाप दूर हो जाओ।

इसके आगे गोवरकी भस्म आदिसे आरतीका विधान है—देखिये

शुद्धगोमयजभस्मापिंडकैर्गंधवारिलुलितैर्जिनप्रभो
अग्रतोवतरणं वितन्महे दग्धमात्मदुरितेन्धनोत्करम्।

(प्रतिष्ठा पाठ नेमिचन्द्राचार्यकृत मुद्रित पत्र ६७७)

अर्थात् सुगंधित जल सहित शुद्ध गोवरकी भस्मके समूहसे जिनेंद्रभगवानकी आरती करता हूं जिससे कि मेरा पाप रूप ईंधनका ढेर जल जाय।

इसके आगे इसका मंत्र —

ओं ह्रीं क्रौं भस्मपिंडकैर्भगवतोवतरणं करोम्य-स्माकं अष्टविधकर्माणि भस्मीकरोतु भगवान् स्वाहा इति भस्मपिंडावतरणम् ।

अर्थात् भस्मके पिंडसे भगवानकी आरती करता हूं जिससे मेरे आठ प्रकारके कर्म भस्म हो जावें ।

और भी आरती—

भस्मान्नमृद्गोमयपिण्डदीपैरद्भिः फलैरक्षतमिश्रपुष्पैः । त्वां वर्धमानैःसहपात्रसंस्थैः दर्भाग्निकीलैरवतारयेऽर्हन्॥ ओं ह्रीं नीराजनं करोमि दुरितमस्माकमपहरतु भग-वान् स्वाहा इति नीराजनं कुर्यात् ।

(प्रतिष्ठा पाठ नेमिचन्द्राचार्यकृत पत्र ४९ छपा हुआ)

अर्थ—भस्म, धान्य, मिट्टी, गोवरकापिंड, दीपक, जल, फल, अक्षत सहित पुष्प इन सबोंको एक पात्रमें रखकर और डाभकी आग्नि उसमें जलाकर उससे हे भगवन् ! आपकी आरती करता हूं । इस आरतीसे हमारे पाप नष्ट हो जांय । और भी अनेक स्थलमें यह आरतीका उल्लेख है ।

दूसरे प्रतिष्ठापाठका प्रमाण—

आचार्यवर्य श्रीमिद्भट्टाकलंकदेव भी अपने बनाये हुए प्रतिष्ठापाठमें लिखते हैं—

"गोमयैर्नूतनैः शुद्धैः संमार्जितमहीतलम् ॥"

(श्रीमदकलंकदेवकृत प्रतिष्ठापाठ लिखित पत्र ६)

अर्थात् जिनालयके विशेषणमें यह वाक्य दिया गया है

कि जिसका महीतल (नीचेकी पृथ्वी) नवीनतासे और भूमिमें नहीं पड़े हुए शुद्ध गोबरसे लीपी हुई हो।

गोबरसे आरतीमें दूसरे प्रमाण–

"ओं ह्रीं क्रोंदूर्वांकुरासितसर्षपयुक्तैः हरितगोमयपिण्डकैर्भगवतोवतरणम् करोमि दुरितमस्माकमनयतु भगवान् स्वाहा इति गोमयपिण्डावतरणम्।"

(आचार्यवर्य भट्टाकलंकदेव विरचित प्रतिष्ठापाठ लिखित पत्र ७४)

अर्थात् दूबके अकुंर, सफेद सरसों युक्त हरे गोवरके पिण्डसे भगवानकी आरती करता हूं। मेरे पापको दूर करो भगवान् !

यह गोबरसे आरतीका विधान है।

और भी प्रमाण–

भूतलापतितात्यन्तशुद्धगोमयपिण्डकैः ।
भस्मादिपिण्डकैरेतैः पंचसंख्यैः पृथक् पृथक् ॥

(आचार्य अकलंकदेवकृत प्रतिष्ठापाठ लिखित पत्र ९)

अर्थात् पृथ्वीमें नहीं गिरे (अधर लिये गये) अत्यंत शुद्ध गोवरके पिंडके द्वारा तथा भस्म सफेद सरसों आदि भिन्न भिन्न रक्खी गई पांच द्रव्योंके द्वारा भगवानकी आरती कर।

और भी–

नीराजयते ततो देवदेवासुरनिषेवितं
वर्धमानादिभिः शुद्धैः द्विषड्भेदैस्तदर्थकैः।
वर्धमानश्चे वर्णान्नैः भस्ममृद्धक्तगोमयैः

पुष्पाक्षतैर्दर्भदीपैर्धूपैर्दीपै जलैः फलैः वक्ष्यमाणभिदैरेतैः पूतैःनींराजनार्थकैः आदि ।

(प्रतिष्ठापाठ पत्र ९)

अर्थात आरती प्रतिष्ठा पाठोंमें बारह प्रकारकी बताई गई है उन्हीं बारह भेदोंकी आरतीका यहां पर उल्लेख कियागया है सोई लिखा है—

सब प्रकारके देवोंसे पूजित ऐसे श्रीजिनेंद्र देवकी वर्धमानादिक बारह प्रकारकी शुद्ध आरातियों द्वारा आरती उतारै, वे बारह भेद आरतियोंके इस प्रकार हैं—

(१) पंचवर्णवर्धमानावतरण, (२) अन्नपिण्डावतरण (३) गोमयभस्मावतरण (४) मृत्तिकावतरण (५) गोमय (गोवर) अवतरण (६) पुष्पाक्षतावतरण (७) दर्भदीपावतरण (८) धूपावतरण (८) दीपावतरण (१०) जलावतरण (११) फलावतरण (१२) भक्तावतरण ।

इन बारह प्रकारकी आरतियोंके बारह भिन्न २ मंत्र हैं और भिन्न २ श्लोक हैं, उन्हींमें—

" **भूतलापपितात्यंतशुद्ध गोमयापिंडकैः** "

यह श्लोक गोमयपिंडावतरणमें आया है

और भी गोमय आरतीमें प्रमाण—

आचार्य इन्द्रनंदिकृत प्रतिष्ठापाठमें भी इसी प्रकार गौमय से आरती कही गई है देखिये—

गोमयस्य च पिंडानि भस्मोदनमयान्यपि ।
दर्भनीराजनस्यार्थं स्वस्तिकं वर्णपात्रकम् ॥
मंगलद्रव्यसम्पूर्णैर्जिनमुत्तारयेद्बुधः ।
ततः प्रक्षालनं वार्भिः कुंभैः कुर्यात्सुनिर्मलैः ॥

आचार्य इन्द्रनंदिप्रतिष्ठापाठ लिखित पत्र ४४)

भस्म, ओदन सहित गोमयके पिंड, दूब, आदि मंगल द्रव्योंसे जिनेंद्र भगवानकी आरती करै। फिर पीछे निर्मल जलसे अभिषेककरै।

और भी प्रमाण—

मट्टिकया गोमयका मत्तसपिंडा दु हरियदव्वजुदा
पुप्पाखदये सगंधे जिणस्स णीराजनं कुज्जा
(इन्द्र नन्दि संहिता)

अर्थात् मट्टी, गोवर, भात, हरीदाभ, पुष्पाक्षत, गंध इनसे भगवानकी आरती करे।

इस लेखके लिखनेका हेतु।

इनके सिवा और भी सभी प्रतिष्ठा पाठोंमें गोवरसे आरतीका विधान है। लेख बाहुल्यसे अधिक प्रमाण नहीं दिये गये हैं, आगमपर श्रद्धालानेवालोंके लिये इतने प्रमाणही पर्याप्त हैं। जिन्हें आगमकी परवा नहीं है किंतु अपनी और अपनी युवक मंडलीकी बातका ही हट है, उन लोगोंके लिये यह हमारा प्रयास है भी नहीं। किंतु जिन धार्मिक पुरुषोंने अनेक शास्त्र नहीं देखे हैं, और " गोवरसे आरती " आदि

जैसे नवीन विषयोंमें जिन्हें संदेह है उन्हींके संदेहको दूर करनेके लिये ही यह लेख हमने लिखा है।

शास्त्रबहिष्कारसे अर्हत्पूजा कैसे होसक्ती है ?

चर्चासागर ग्रन्थमें गोबरकी आरतीका प्रमाण आनेसे ये सुधारक भाई चर्चासागर ग्रंथकाही बहिष्कार करनेके लिये तय्यार होगये हैं, परंतु उपर्युक्त कथनसे जब समस्त प्रतिष्ठा पाठोंमें वही कथन पाया जाता है तो क्या वे उन समस्त प्रतिष्ठा पाठोंका भी बहिष्कार करेंगे ? या उन्हें वे अप्रमाण ठहरावेंगे ?

यदि उन सब शास्त्रोंको अप्रमाण ठहरावेंगे तो फिर अर्हन्त भगवानकी प्रतिष्ठा कैसे की जायगी ? और उन ग्रंथोंके द्वारा की गई बिम्बप्रतिष्ठा मान्य समझी जायगी या नहीं ? यदि नहीं तो सब मंदिरोंकाही निषेध हुआ जाता है. यदि प्रमाण भूत समझी जायगी तो उन ग्रंथोंकी मान्यता स्वीकार करनी ही पड़ेगी ! और जब उन ग्रन्थोंकी मान्यता स्वीकार है तो फिर चर्चासागर ग्रंथपर ही विना कारण रोष क्यों किया जाता है ? क्योंकि चर्चासागर ग्रन्थमें जो कुछ गोबरकी आरतीके प्रमाण दिये गये हैं वे सब शान्तिचक्रपूजा और लघुस्नपन शास्त्र तथा चर्चा नं० १९९ में जो आठ प्रकारकी आरतीके मंत्र दिये गये हैं वे सब पूजा सार और बृहत्स्नपन शास्त्रसे दिये गये हैं और ये ही मन्त्र ज्योंके त्यों श्री अकलंकदेवआचार्यकृत प्रतिष्ठापाठमें रक्खे हुए हैं। इसलिये स्व० पं० चंपालालजीने गोबरकी आरतीके संबंधमें

भी अपनी निजी सम्मतिसे एक अक्षर भी नहीं लिखा है किंतु जो कुछ लिखा है शास्त्रोंका उल्लेखकर उनका अवतरण ही दिया है ऐसी अवस्थामें चर्चासागरका बहिष्कार या उसकी अप्रमाणताका होहल्ला मचानेवाले भाई अब इन समस्त प्रतिष्ठा पाठोंके आचार्य कृत प्रमाणोंको देखकर भी यादि अपनी भूल पर पश्चात्ताप करेंगे तो आचार्यवर्य श्रीभट्टाकलंकदेव, आचार्यनेमिचंद्र, आचार्य इन्द्रनंदि, आचार्य सोमदेव,आदि महान्२ आचार्योंका "जूआचोर" आदि उनके, उन बचनोंसे घोर अपमान हुआ है और उससे जितना भारी, पापवंध हुआ है वह कुछ हलका अवश्य होजायगा।

उपर्युक्त दो चर्चाओंके सम्बन्धमें बहुत बड़ा विरोध झांझरीजी आदि भाइयोंने उठाया था, इसलिये "मुनिराज नगरमें रह सक्ते हैं" और "गोबरसे आरती होना" शास्त्र विहित मार्ग हैं यह वात हमने अनेक शास्त्रोंके प्रमाणसे प्रमाणित करदी है।

आगे चर्चासागरकी जिन चर्चाओंको लेकर चर्चासागर ग्रंथको अमान्य ठहराया जाता है उनपर भी हम संक्षेप रीतिसे प्रकाश डालते हैं, अधिक लिखनेसे लेख बढ़ जानेका भय है, यदि अधिक विचार करनेके लिये जो भाई इच्छा प्रकट करेंगे तो उन्हें समयानुसार अधिक ग्रंथोंके और भी प्रमाण देनेके लिये हम तय्यार हैं।

मालाएँ

चर्चा नं० २२ में क्रियाकोष ग्रन्थके आधारपर सोना,

चांदी, मूंगा, मोती आदि मालाओंके भेद और उनके फलों-का वर्णन किया गया है।

इस सम्बन्धमें झांझरीजी लिखते हैं कि "तो क्या रत्नोंके माला द्वारा जाप्य करनेसे लाखों उपवासका फल होगा? लोग व्यर्थ ही सूतकी मालाओं द्वारा जाप्य करके हजारों उपवासोंका फल योंही छोड़ देते हैं? भावोंका विचार न कर मात्र कीमती मालाओंको महत्त्व देना वास्तवमें नई सूझ है,,

यहां पर पहली बात तो यह है कि चर्चासागर ग्रंथमें जो कुछ मालाओंका वर्णन किया है वह क्रियाकोष और एक संस्कृत प्रमाण सहित लिखा है—

पं० किशनसिंह कृत क्रिया कोषमें मालाओंके भेद इस प्रकार लिखे हैं—

प्रथम फटिक मणि मोतीमाल, सोना रूपा सुरंग प्रवाल।
जीवापोतारेशम जान, कमलगटा और सूत बखान।
येनवभांतिजापके भेद, भावसहित जपि तजि मन खेद।

(क्रियाकोष छपा हुआ पत्र ९८)

क्रियाकोषके इन पद्योंमें अंतके चरणमें यह स्पष्ट रीतिसे बताया है कि, इन्हें भाव सहित जपो अर्थात् बिना भावोंके जो फल चाहते हो वह नहीं मिलेगा।

फिर चर्चासागर ग्रंथमें जो दूसरा प्रमाण है उसमें स्पष्ट लिखा हुआ है कि—

सूत्रस्य जाप्यमालायाः सदा जापः सुखावहः।
दग्धभृदस्थिकाष्ठानामक्षमालाऽफलप्रदा ॥

सुवर्णरौप्यविद्रुममौक्तिका जपमालिकाः ।
उपवाससहस्राणां फल यच्छन्ति जायतः ॥

अर्थात् सूतकी मालाका जप सदा सुखकारी है। पक्षी- मिट्टी, हड्डी, काठ, लकडी और रुद्राक्ष इनकी मालाओंका जप फल देनेवाला नहीं है। परंतु सोना चांदी मूंगा मोती इनकी मालाओंका जप हजारों उपवासका फल देने-वाला है।

इन श्लोकोंमें सूतकी मालाको तो सदैव सुखकारी ही बताया है फिर नहीं मालूम झांझरीजी और उन जैसे विचार-वालोंको इन मालाओंके विषयमें भी क्यों कुतर्क खड़ा हो गया।

जो रत्नोंकी मालाओंको कथन क्रियाकोषका प्रमाण देकर चर्चासागरमें किया गया है वैसा कथन अनेक शास्त्रों-में मिलता है देखिये--

मुनिराज वादिराज अपने एकभाव स्तोत्रमें कहते हैं कि--

प्रापद्दैवं तव नुतिपदैर्जीवकेनोपदिष्टैः ।
पापाचारी मरणसमये सारमेयोऽपि सौख्यम् ॥
कः संदेहो यदुपलभते वासवश्रीप्रभुत्वम् ।
जल्पञ्जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कारचक्रम् ॥

(एकीभावस्तोत्र श्लोक १२)

अर्थ--मरते हुए कुत्तेको जीवंधर स्वामीने नमस्कार मंत्र दिया था, उसके प्रभावसे वह कुत्ता मर कर स्वर्गमें देव हुआ था तो जो पुरुष निर्मल मणियोंकी मालाओंसे(रत्नोंकी

मालाओंसे) हे भगवन् तुम्हारे नमस्कार मंत्र का जप करता है वह इन्द्रपदको पा लेता है इसमें कोई संदेह नहीं है।

इसी श्लोकका हिंदी पद्यानुवाद स्व० पं० भूधरदासजीने इस प्रकार किया है—

जो मणि माला लये जपै, तुम नाम निरंतर।
इन्द्र संपदा लहै कौन, संशय इस अन्तर॥ १२॥
(बृहज्जिनवाणी संग्रह पत्र १५२)

ऊपरके श्लोकसे दोनो बातोंका खुलासा होजाता है, रत्नोंकी मालाका और उसके फलका भी।

रत्नोंकी मालामें और भी प्रमाण—

आचार्यवर्य सोमदेव यशस्तिलकचंपूके अन्तर्गत श्रावकाचारमें

पुष्पैः पर्वभिरंबुजबीजस्वर्णार्ककान्तरत्नैर्वा
निष्कंपिताक्षवलयः पर्यंकस्थो जपं कुर्यात्॥
अंगुष्ठे मोक्षार्थी तर्जन्यां साधु बहिरिदं नयतु।
इतरास्वंगुलिषु पुनर्बाहिरन्तश्चैहिकापेक्षी॥
वचसा वा मनसा वा कार्यो जाप्यःसमाहितस्वान्तैः।
शतगुणमाद्यैः पुण्यं सहस्रसंख्यं द्वितीये तु॥
(यशस्तिलक चम्पूके अन्तर्गत श्रावकाचारवर्णनमें पत्र ३९० उत्तरार्ध)

इन श्लोकोंका तात्पर्ययह है कि—जिसकी इंद्रियां अचल हैं और जो पर्यंकासनसे बैठा है ऐसे मनुष्यको पुष्पोंसे, अंगुलियोंकी रेखाओंसे, कमलगट्टा, सोना, सूर्यकान्तमणि और रत्नोंसे अर्थात् इनकी मालाओंसे जप करना चाहिये।

६

जो पुरुष मोक्षकी इच्छा रखता है उसे मालाको अंगूठे पर अथवा तर्जनी अंगुलीके बाहर रखना चाहिये। तथा इस लोककी अपेक्षा रखनेवाला अन्य अंगुलियोंके भीतर वा बाहर मालाको रख सक्ता है। वचन वा मनसे वह जप करना चाहिये जिसका चित्त जपमें तल्लीन है ऐसे पुरुषको वचनसे जप करनेमें सौगुना पुण्य है और मनसे जप करनेमें हजार गुना पुण्य है।

और भी प्रमाण–

स्फाटिकश्च प्रवालश्च मुक्तास्वर्णश्च बीजकम्।
शान्तिपुष्टिवशाकृष्टिविद्वेषोच्चाटरोधनेः॥ १॥
शान्तिपुष्टैर्नु रुद्राक्षैः पद्माक्षैः स्फटिकैर्जपेत्।
तद्वर्णयुतसत्पुष्पैर्जपः स्यात् सर्वकर्म्माणि॥२॥
मोक्षशान्त्यैवशाकर्षस्तम्भद्वेषापसारके।
अङ्गुष्ठमध्यमाभ्याश्चतर्जन्या च मणिश्चरेत्॥ ३॥
इति जाप्यलक्षणम्।

(प्रतिष्ठापाठ ब्रह्मवीरुध संगृहीतपत्र ८१।८२)

और भी प्रमाण–

विद्यानुवादे एकमणिविशेषः।

स्फटिकप्रवालमुक्ताचामीकरपुत्रजीवकृतमणिभिः।
अष्टोत्तरशतजाप्यं शान्त्याद्यर्थं करोतु बुधः॥१॥

(पत्र २३ श्लोक २०)

इन श्लोकोंसे अनेक प्रकारकी मालाओंका होना और

सामग्रीके भेदसे फलमें हीनाधिकता होना स्पष्ट रीतिसे बताया गया है।

ओरभी प्रमाण–

आचार्य देवसेन प्राकृत भावसंग्रह शास्त्रमें लिखते हैं—

कुसुमेहि जव हि णिच्चं सो हणड पुराणयं पावं

(छपी हुई प्रति भावसंग्रह पत्र ९८ श्लोक ४४७)

अर्थ–जो पुष्पोंसे नित्य जप करता है वह पुरातन संचित पापोंको नष्ट करदेता है।

और भी प्रमाण–

अष्टोत्तरशतैः पुष्पैः जापं कुर्याज्जिनाग्रतः ।
पूज्यैः पंचनमस्कारैर्यथावकाशमंजसा ॥

(भावसंग्रह पत्र १९८, श्लोक ४९३)

अर्थात्–भगवान के सामने पूज्य पंचनमस्कारमंत्रका यथासमय एकसौआठ पुष्पोंसे जप करना चाहिये।

इससे यह बात भलीभाँति सिद्ध होजाती है कि जप केवल सूतकी मालासेही नहीं कियाजाता है किन्तु पुष्प, रत्न सोना, कमलगट्टा आदिकी मालाओंसे भी किया जाता है। भिन्न २ प्रयोजनके लिये भी भिन्न २ प्रकारकी मालाओंका विधानहै।

और भी प्रमाण–

अनाद्यानिधनं मंत्रं स्मरेदष्टोत्तरं शतम् ।
सुवर्णकुसुमैर्जातिपुष्पैर्वापि लवंगकैः ॥

(विवाह पद्धति छपी हुई पत्र ११)

अर्थात् अनादि-अनन्त इस नमोकार मन्त्रको सुवर्णके पुष्पोंसे, जाति पुष्पोंसे तथा लवंगोंसे एक सौ आठ वार जपै।

इसके सिवा जहां इस लोकसंबंधी कार्योंकी सिद्धिकी मुख्यतासे मन्त्राराधन किया जाता है वहां मालाओंके रंगभी जुदे २ शास्त्रकारोंने बताये हैं देखिये-

मंत्र जंत्र सहित भक्तामर स्तोत्रमें लिखा है-

दूसरे काव्यके मन्त्रसे माला श्याम।

तीसरा काव्य-माला कमलकी।

चौथा काव्य-सफेद-जाप्य

आठवां काव्य-माला अरीठाके बीजकी।

बारहवां काव्य-जाप्य लाल।

तेरहवां काव्य-जाप्य पीला

पंद्रहवां काव्य-जाप्य लाल

सोलहवां काव्य-जाप्य हरा

अठारहवां काव्य-जाप्य लाल

और भी यदि देखना हो तो विद्यानुवादादिक मन्त्र शास्त्रोंको देखो, वहां मालाओंके भेद, आसनोंके भेद, फलोंके भेद, जप करनेकी पद्धतिके भेद सब जुदे २ बहुत विस्तारसे बताये गये हैं।

कलकत्तामें विद्यानुवाद शास्त्रको बडे मंदिरजीसे मँगाकर उसमेंसे इन सब बातोंको हमने पं० गजाधरलालजी, रतन-लालजी झांझरी और उपस्थित सब भाइयोंको बताया भी था।

और भी प्रमाण–

पुप्के पेरूहिं अंवुयवीय सुवण्णक्ककोदरयणैवा
णिक्कंपिदच्छवलयो पलंकत्थो जपं कुणइ ॥

(आचार्य इन्द्रनंदिकृत इन्द्रनंदि संहितापत्र ३ श्लोक ३)

अर्थात् पुष्प अंगुलीकी रेखाएं कमलगट्टा सुवर्ण अर्ककांत मणि, और रत्नोंकी मालाओंसे इन्द्रियोंको निश्चय कर पर्यंकासनसे जप करे ।

वपुसा वा मणसा वा कज्जो जप्पो समहि दस्संते ।
सदगुण पढमे पुण्णं सहस्ससंखं दुतीये दु ।

(इन्द्रनंदि संहिता पत्र ३ श्लोक ६)

कायके साथ वचन और मनसे जप करना चाहिये वचनसे जप करनेमें सौ गुणा पुण्य है और मनसे जप करनेमें हजार गुणा पुण्य है ।

यह बात भी ध्यानमें रखना चाहिये कि व्रत,पूजा, ध्यान, जप इन सबोंके लिये सदैव विशेष २ साधनोंका शास्त्रकारोंने विधान किया है जैसे २ साधन होते हैं उसी २ प्रकार भावों-की तल्लीनता और निर्मलता होती है ।

यदि साधन और उपकरण उत्तम एवं अनुकूल न हों या यथेच्छ न हों तो परिणामोंमें भी उतनी लगन नहीं हो पाती है । यह बात पूजामेंभी प्रसिद्ध है, पूजाके लिये जैसे उपकरण होंगे, जैसी सामग्री होगी वैसेही भाव लगते हैं, इसीलिये अनेक समर्थ धर्मात्मा पुरुष सोनेकी झारी बनवाकर उससे ही जल चढ़ा कर अपनी प्रगाढ़ भक्ति करते हैं, और पूजामें भी

उस प्रकारका पाठ सराग भावोंकी भक्तिके लिये ही है जैसा कि निर्वाणक्षेत्रकी पूजामें लिखा है—

"शुचि क्षीर दधिसम नीर निर्मल कनक झारीमें भरों।
संसार पार उतार स्वामी जोरकर विनती करों"

(बृहज्जिनवाणी संग्रह छपी हुई पत्र २३८)

यदि विना द्रव्य क्षेत्र कालादि साधनोंकी उत्तमता और विशेषताके केवल भावोंसे ही निर्मलता बढ़ती हो तो फिर क्यों कंचन झारी आदिके विधान शास्त्रकारोंने बताये हैं ? अन्यथा सिर्फ शुद्ध जल चढ़ानेका ही वे विधान करते ? परन्तु यह अनुभवसिद्ध वात है कि विना उत्तम या विशेष द्रव्यादि साधनोंके भावोंमें विशुद्धि या तल्लीनता आती ही नहीं है।

सुधारक लोग तो आजकल चमर छत्र सोने और रत्न-जड़ित सिंहासन तथा बढ़िया बहुत कीमती चंदोवा आदिका सर्वथा निषेध करते हैं वे तो मंदिरोंको खँडहर जैसा बनाना चाहते और कहते हैं कि " वीतराग मूर्तिके सामने इन आडम्बरोंकी क्या जरूरत है" उत्तरमें हम उनसे कहते हैं कि हां भाई सा० आप सरीखे सुधारवादियोंको तो देव दर्शन की भी जरूरत नहीं है क्यों कि आप लोग तो उस विषयमें भी कह देते हैं कि "जैन सिद्धान्त भावोंको ही प्रधान बताता है इस लिये हम अपने भावोंसे विना मंदिर गये भी घर बैठेही परोक्ष दर्शन कर लेते हैं" ऐसे भावहीन कोरे कुतर्कवादियोंसे कुछ भी कहना व्यर्थ है और धर्मात्मा भाई विशेष उपकरणों

द्वारा भगवद्भक्तिमें लीन होकर अनन्तपुण्यबन्ध करते ही हैं देखिये—

आचार्य वसुनंदि लिखते हैं—

गहिऊण सिसिरकरकिरणणियरधवलं रयणभिंगारं ।
मोत्तियपवालमरगयसुवण्णमणिखचियवरकंठं
सुयवुत्तकुसुमकुवलयरजपिंजरसुरहिविमलजलभरियं
जिणचरणकमलपुरओखविज्जओ तिण्णधाराओ ।

(वसुनंदिश्रावकाचार छपा हुआ पत्र ७४)

अर्थ—मोती, मूंगा, पन्ना, सोना, और रत्नोंसे जिस झारीका कंठ बनाया गया हो, और चन्द्रमाकी किरण समूहके समान शुक्लवर्ण ऐसी रत्नोंकी झारीमें, शास्त्रोक्त पुष्प तथा कमलोंकी परागसे सुगंधित जल भर करके श्री जिनेंद्रके चरणकमलके आगे तीन धारा जलकी क्षेपण करै।

यदि विना उपकरण विशेषके ही भाव विशुद्ध हो जांय तो फिर आचार्य रत्नोंकी झारीका विधान पूजनमें क्यों करते, इतना ही नहीं, आचार्य वसुनंदिने चंदोवा भी रत्नोंकी माला सहित होना चाहिये ऐसा कहा है।

" मुत्तादामेहिं तहा किंकिणजालेहिं विविहेहिं ।

(वसुनंदिश्रावकाचार पृष्ठ ६९)

इतना ही क्यों भावोंकी विशुद्धिके लिये वीतराग मूर्ति भी हीरा, पन्ना, माणिक मोती आदि रत्नोंकी बनानेका

विधान है। प्रमाणके लिये वसुनंदि श्रावकाचार रत्नकरण्ड श्रावकाचार आदिपुराण आदि अनेक ग्रंथ हैं।

मूड़विद्री (दक्षिण) में रत्नोंकी प्रतिमाओंके दर्शनों को प्रतिवर्ष अनेक जैनी भाई जाते भी हैं, यदि द्रव्य विशेषमें साधनोंमें महत्त्व नहीं हो तो फिर सोना चांदीके वर्तन, रत्नों की प्रतिमायें, रत्नोंकी झारी, रत्नोंकी मालाओं सहित चंदोवा, सिंहासन आदि उपकरणोंका क्यों विधान किया जाता ?

इसी प्रकार रत्नोंकी मालाओंका विधान है और देखा भी जाता है कि मूंगा, मोती आदिकी मालाओं द्वारा अनेक भाइ जप करते हैं।

खासकर मंत्रशास्त्रोंमें तो मालाओंके भेद आसनोंके भेद वस्त्रभेद, आदि बातें नहीं करने से मंत्रका फल नहीं होता है।

दर्शन कथामें लिखा हुआ है कि हस्तिनापुरके महारथ सेठ की पुत्री मनोवतीने मुनीश्वरके पास विद्या पढी थी और पीछे मुनि महाराजके पाससे उसने देव दर्शन करनेका नियम, लिया साथ ही गजमोती चढ़ानेका भी नियम लिया था देखिये—

"गजमोतिनके पुंज चढ़ाय, तब मैं भोजन करूं बनाय।
इतनी दर्शप्रतिज्ञा लई, श्रीमुनिवर की साखि जु दई॥"

(दर्शनकथा छपीहुई पत्र ८)

"गजमोती करमें लीने, जिन भवन पयान सु कीने।
जिन दर्श करे अघ ताने, मन फूल न अंग समाने॥"
(दर्शन कथा पत्र १६)

इस दर्शन कथासे भी यह बात स्पष्ट रीतिसे समझमें आजाती है कि जैसा पूजाके लिये द्रव्य होगा वैसा ही परिणाम लगेगा नहीं तो मनोवती मुनीश्वरकी साक्षीसे मोती चढ़ाने की प्रतिज्ञा क्यों करती? क्या अक्षत चढाने मात्रसे भावोंकी निर्मलता नहीं होती?

यद्यपि अक्षत चढानेसे भी निर्मलता हो जाती है उसका यहां कोई निषेध नहीं है परंतु द्रव्यकी विशेषता भावोंकी विशेष जागृतिमें और भी साधक बन जाती हैं। इसीप्रकार जप के लिये सूतकी माला भी सुखप्रद है, साथ ही रत्नों आदि की मालायें और भी विशेष परिणामों की आकर्षणता के लिये साधक हैं।

आगम प्रमाणसे सन्तोष करने वालोंके लिये इतना लिखना पर्याप्त है हमें भाई रतनलालजी झाझरी की बुद्धि पर आश्चर्य होता है, इस निर्विवाद और हर एकके अनुभव तथा अनेकोंके कार्यमें लाये जाने वाले रत्नोंकी मालाओंके विषयको लेकर भी उन्होंने चर्चासागर ग्रंथ को अमान्य ठहरानेकी और उस ग्रथका उपहास करनेकी बात कह डाली।

हमारी समझसे जिसे थोडा भी जैनशास्त्रोंका ज्ञान होगा और अनुभव होगा वह कमसे कम ऐसे निर्णीत विष-

यों पर तो अपनी कुतर्कणाका उपयोग न करेगा। क्या झांझरीजी इन रत्नमालाओं और उनके फलके विषयमें किसी आगमका विरोध दिखा सकते हैं? कभी नहीं, किसी भी आगममें रत्नमालाओंका निषेध नहीं मिल सक्ता है, नही मालूम ये लोग किस आधार पर इन विषयोंका विरोध करते हुये शास्त्रोंको अमान्य ठहराने चले हैं? आश्चर्य है इस भारी दुःसाहस पर!

आसनों पर विचार।

चर्चासागर ग्रंथमें चर्चा नं० २९ में अर्हन्त भगवानकी पूजा और जपके लिये गृहस्थके भिन्न २ प्रकारके आसनोंका विधान बताया गया है और उसके लिये आदिपुराण हरिवंश पुराण आदि ग्रंथोंका उल्लेख किया गया है।

इन आसनोंके विषयमें झांझरीजी लिखते हैं कि "श्री सम्मेदशिखरजी आदिकी यात्राओंमें सभी भाई पृथ्वी या पाषाणशिला पर खड़े होकर ही पूजा करते हैं या करते आये हैं तो क्या उन्हें इसका फल दुर्भाग्य और रोग पीड़ा ही प्राप्त होगा, पूजा और ध्यानका फल भावों द्वारा न प्राप्त होकर केवल आसनोंपर अवलम्बित बताना केवल धृष्टता है। मुनि गण ऐसे आसन कहांसे प्राप्त कर सकते हैं?"

ये झांझरीजीकी ऊपरकी पंक्तियां कितनी धोखेसे भरी हुई हैं पाठक इसका विचार करें. ये महाशय यदि ग्रंथकी

बातों पर ही विचार करते तो भी शिष्ट सम्प्रदाय समझी जाती परंतु ये तो लोगोंकी आंखोंमें सामनेसे ही धूल डाल रहे हैं, कितना अंधेर है लोगोंको कुछका कुछ समझा देनेसे वे समझते होंगे कि लोग हमारी बात मान लेंगे परंतु जब ग्रंथ खोलकर उसकी पंक्ति और अभिप्राय देखा जायगा तब वे लोग झांझरीजीको क्या धोखा देनेवाले नहीं समझेंगें ? अस्तु।

झांझरीजीने सबसे बड़ा धोखा तो यह दिया है कि गृहस्थोंके लिये जो जप पूजाके आसन बताये गये हैं उन्हें उन्होंने मुनियोंके लिये बता कर लोगोंको भड़कानका और शास्त्र विरुद्ध कथन सिद्ध करनेका झूंठा साहस किया है। उन्होंने लिखा है कि मुनिगण ऐसे आसन कहांसे प्राप्त कर सकते हैं ? परंतु झांझरीजीका यह लिखना सरासर धोखा देना है, ग्रंथमें कहीं भी मुनियोंका जिकर इस चर्चामें नही है पाठकगण स्वयं २५ वी चर्चाका ग्रंथ खोलकर देख लेवें।

जब कि सफेद वस्त्र, पीला वस्त्र, रक्त वस्त्र और डाभके आसनोंका विधान बताया गया है तब मुनियोंके लिये यह बात उस पदके लिय हा अयोग्य है वे वस्त्रोंके आसन पर कभी बैठ ही नहीं सकते फिर भिन्न २ आसनों पर बैठकर जप करनेका भिन्न २ फल बताया गया है उससे भी यह सिद्ध हो जाता है कि यह कथन गृहस्थोंके लिये ही है उन

आसनोंके अभावमें दरिद्रता आदि हानियां बतायीं गईं हैं उनमें भी गृहस्थोंका ही कथन सिद्ध होता है फिर चर्चा-सागरमें स्पष्ट लिखा हुआ है कि आदि पुराणमें जो गर्भान्वय आदि क्रियाएँ लिखी हैं उनमें भी डाभके आसनका ही विशेष वर्णन है इससे सिद्ध होता है कि डाभका आसन ही सबसे उत्तम है ". इन चर्चासागरकी पंक्तियोंसे भी यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह आसनादि भेद गृहस्थके लिये ही बताया गया है क्योंकि गर्भान्वयादि क्रियाओंका संबंध गृहस्थसे ही है मुनि योग्य क्रियाओंका यहां प्रकरण भी नहीं है। चर्चासागरका यह कथन मुनियोंके सम्बंधमें है ऐसा झांझरीजी क्या किसी प्रकार सिद्ध कर सकते हैं? कभी नहीं कर सकते फिर मुनिगणका उल्लेख कर झांझरीजीने समाजको बहुत बड़ा धोखा दिया है। इतना धोखा देते हुए भी वे कितने शिष्ट पुरुष हैं कि आसनोंका विधान करनेवालोंको धृष्ट बताते हैं हम तो अपनी कलमसे कुछ नहीं लिखना चाहते हैं पाठक स्वयं समझ लें कि वास्तवमें कौन धृष्ट है ?

आसनोंका विधान और उसका खुलासा।

दि० जैन सिद्धांतमें यह बात बताई गई है कि श्रीजिनेन्द्र पूजा और जप दोनों ही दो उद्देश्योंसे किये जाते हैं, एक तो परमार्थसिद्धिके लिये अर्थात् किसी भी सांसारिक मनोरथकी वासनाका तनिक भी ध्यान न रखकर केवल मोक्षसिद्धि एवं आत्माकी निर्मलताका ध्येय रखकर निरपेक्ष दृष्टिसे जो

पूजा और जप किया जाता है वह तो परमार्थसिद्धिके लिये पूजा व जप कहा जाता है। इस प्रकारकी पूजा जपके लिये रक्तवस्त्र डाभ आदिके भेदोंसे जो आसन भेद बताया गया है वह उपयोगी एवं आवश्यक नहीं है। वहां वो शिला या पृथ्वी आदि किसी भी स्थानपर जपादि किये जाते हैं और उनका फल कर्मोंकी निर्जरा तथा निरपेक्ष पुण्य-बन्ध है।

परंतु जो पूजा और जप किसी इष्ट मनोरथकी सिद्धिके उद्देश्यसे किया जाता है वह ऐहिक कार्य फलप्रद होता है। ऐसे प्रकरणोंमें जो जप पूजा अनुष्ठानादि किये जाते हैं। उन्हींमें रक्तवस्त्र, हल्दीवस्त्र, सफेदवस्त्र, डाभ आदि आसनों-का विधान शास्त्रकारोंने बताया है भिन्न भिन्न कार्य सिद्धिके लिये भिन्न २ आसन भिन्न २ माला आदिका विधान शास्त्रों-में मिलता ही है।

खासकर मंत्रशास्त्रोंमें तो लालवस्त्र, पीतवस्त्र, आदिके आसनोंके भेद तथा कालीमाला, सफेदमाला, हरीमाला आदि मालाओंके भेद और अंगुलियोंके भेद, अर्थात् किस कार्यके लिये किस अंगुलीसे जप करना फलप्रद होगा आदि सभी बातोंका विधान मंत्रशास्त्रोंमें सर्वत्र लिखा हुआ है। देखिये श्रीभक्तामर स्तोत्र मन्त्रजन्त्रसहितमें बताया गया है—दूसरे काव्यमें लिखा हुआ है—

"माला श्याम, पूर्व दिशा मुख कीजै, नजरबन्दके लिये"
कालावस्त्र, दण्डासन, काला आसन, शत्रु उच्चाटनके लिये"

तीसरे काव्यमें लिखा हुआ है—
"माला कमलकी"
चौथे काव्यमें लिखा हुआ है—
"पुष्प श्वेत, आसन श्वेत, सफेद जाप्य"
पांचवें काव्यमें लिखा हुआ है—
"पीला पुष्प, वस्त्र पीला"
छठे काव्यमें लिखा हुआ है—
"वस्त्र आसन दोनों लाल, पुष्प लाल"
आठवें काव्यमें लिखा हुआ है—
"माला अरीठाके बीजकी"
बारहवें काव्यमें लिखा हुआ है-
" जाप्य लाल "
तेरहवें काव्यमें लिखा हुआहै—
" जाप्य पीला "
पन्द्रहवें काव्यमें लिखा हुआ है—
" जाप्य लाल "
सोलहवें काव्यमें लिखा हुआ है—
" जाप्य हरा "
अठारहवें काव्यमें लिखा हुआ है—
"जाप्य लाल" आदि।

(श्रीभक्तामर स्तोत्र मन्त्र जन्त्र सहित)

उपर्युक्त काव्योंमें आसनोंके भेद, मालाओंके भेद, वस्त्रोंके भेद सभी बताये गये हैं।

प्रमाणके लिये इतना लिखना ही पर्याप्त है यदि और भी प्रमाण देखना हो तो विद्यानुवाद महामन्त्रशास्त्रको देखना चाहिये। उक्त शास्त्रमें जगह २ आसन भेद, माला भेद,

वस्त्र भेद, पुष्प भेद, आदि सब बातें खुलासा रूपसे लिखी हुई हैं, कलकत्तामें हमने विद्यानुवाद ग्रंथ मँगाकर यह प्रकरण उसमेंसे दिखाया भी था।

और भी देखिये—

भगवज्जिनसेनाचार्य आदिपुराण शास्त्रमें गर्भान्वयादि क्रियाओंके प्रकरणमें लिखते हैं—

दर्भास्तरणसम्बन्धस्ततः पश्चादुदीर्यताम्।
विघ्नोपशांतये दर्पमथनाय नमः पदम्॥

(आदिपुराण छपा हुआ पर्व ४० पत्र १४२४ श्लोक ६)

अर्थात् दर्भके आसन (डाभके आसन) पर बैठकर विघ्नोंकी शांतिके लिये दर्पमथन करनेवाले श्रीजिनेंद्रदेवके लिये नमस्कार करता हुआ "ओं दर्पमथनाय नमः" यह मन्त्रोच्चारण करे।

यही बात चर्चासागरमें लिखी गई है और डाभके आसनको सर्वोत्तम बताया गया है जैसा कि श्री आदिपुराणजीमें ऊपरके श्लोक द्वारा बताया गया है।

इन आसन, जाप और रक्त पीत वस्त्रोंके सम्बन्धमें जो भाई झांझरीजीने चर्चासागरमें दिये गये प्रमाणोंको धृष्टता बतायी है सो यह बात उनकी अनभिज्ञता और उद्धत्ताको प्रकट करती है।

मन्त्रशास्त्रोंके विधानोंको और उनकी अनुष्ठान क्रियाओंको जब अनेक विद्वान् भी नहीं समझ सके हैं तो विचारे झांझरीजीमें तो उनके जाननेके लिये पात्रता ही नहीं है।

व्रतभ्रष्ट और शूद्रके दर्शनपर शुद्धि विधान—

चर्चा नं० २७

"शूद्र तथा व्रतभ्रष्टके दर्शन होजायँ तो जापको छोड़कर प्राणायाम और आचमन करनेसे शुद्धि हो"

ये पंक्तियां तो चर्चासागर ग्रंथकी बताकर कामाके भीतर रक्खी गई हैं, इसके ऊपर झांझरीजीने जो अपनी सम्मति लिखी है वह इस प्रकार है:—

"मुनियोंको आचमन करनेकी सुविधा किस प्रकार हो सकी है? सभी ग्रन्थोंमें मुनियों द्वारा शूद्रों, चांडालों और व्रतभ्रष्टोंको उपदेश देनेकी बात पाई जाती है। जब वे जाप कर रहे हों और उसी समय कोई शूद्र या व्रतभ्रष्ट उनके सामने आ उपस्थित हो तो मुनि या श्रावकने आच-मन और प्राणायाम द्वारा शुद्धि की हो ऐसा किसी महानु-भावने देखा या सुना है क्या? यह आचमन और प्राणा-यामका सम्बन्ध जैनियोंमें नया ही सुना है, यदि रात्रिमें ऐसा अवसर आ उपस्थित हो तो रात्रिभुक्त त्यागी किस प्रकार आचमन कर सकता है? इससे मालूम होता है इसका लेखक जैनी नहीं है अथवा जैनधर्मसे अनभिज्ञ है"

ये पंक्तियां झांझरीजीकी निजी सम्मतिरूप हैं जो पर्चामें उन्होंने लिखी हैं।

झांझरीजीकी धोखाबाजी.

पाठक गण! झांझरीजीने अपने पर्चेमें चर्चासागरमें जो बातें नहीं हैं उन्हें अपनी ओरसे रखकर और उन्हें चर्चासा-

गरकी बताकर जो समाजको जगह२धोखा दिया है वह उनका अक्षम्य अपराध है और उसके लिये वे समाजद्वारा दण्ड पानेके पात्र ठहरते हैं नहीं तो चर्चा नं० २७ की समालोचनामें उन्होंने मुनियोंके लिये आचमनका विधान कैसे बतलाया है ? जबकि ग्रंथमें शुरूसे अखीरतक श्रावकका स्पष्ट उल्लेख है तब उन्होंने मुनियोंके लिये बताकर समाजको भड़कानेके लिये सर्वथा मिथ्या बात क्या लिखी।

देखिये चर्चासागरमें चर्चा नं० २७ में प्रारंभमें ही यह बात लिखी है कि–

" स्नान कर धोती दुपट्टा दो वस्त्र पहनकर सदाचारपूर्वक जप करनेके लिये बैठना चाहिये और उस समय इतनी बातोंका त्याग कर देना चाहिये जो अपने व्रतोंसे भ्रष्ट हो गया है उसका तथा शूद्रका देखना. इन दोनोंके साथ बात चीत करना. इन दोनोंके वचन सुनना छींक लेना, यदि जप करते समय ऊपर लिखी बातें होजायँ तो उसी समय जप छोड देना चाहिये और फिर आचमन और षडंग-छह अंगोंसे सुशोभित प्राणायाम कर बाकी बचे हुए जपको अच्छीतरह करना चाहिये।यदि आचमन और प्राणायाम न हो सके तो भगवान जिनेंद्रदेवके दर्शन कर पीछे जप करना चाहिये "

इसके नीचे और भी स्पष्ट लिखा है देखिये–"जो श्रावक जप करते समय प्रमादी होकर ऊंघते हैं नींदका झोंका लेते हैं अथवा बार २ उवासी लेते हैं अथवा और किसी प्रकारका प्रमाद करते हैं उनका जप करना न करनेके समान है "

इन ऊपरकी चर्चासागरकी पंक्तियोंसे बिलकुल स्पष्टतासे यह बात प्रकट होजाती है कि यह सब विधान श्रावकके लिये है । श्रावकका नामतक लिखा हुआ है और ऊपर धोती दुपट्टा पहनकर यह बात भी लिखी हुई है फिर झांझरीजीने जो यह लिखा है कि "मुनियोंको आचमन करनेकी सुविधा किस प्रकार होसक्ती है ? आदि वाक्यों-में कई जगह मुनियोंका भी उन्होंने जो उल्लेख किया है वह सरासर धोखा दिया है. वह कथन सिर्फ श्रावकके लिये है और उस बातका खुलासा भी कर दिया गया है, परंतु झांझरीजी तो समाजको यह बताना चाहते हैं कि देखो चर्चासागरमें मुनियोंको भी आचमन बताया है ? कहिये और धोखा किसे कहते हैं क्या यह बड़ा अपराध नहीं है ? अपने मनसे कोई बात बनाकर उसे ग्रंथकी बताना फिर उसकी बुरी टिप्पणी कर ग्रंथको अप्रमाण ठहराना यह क्या अक्षम्य अपराध नहीं है ? अस्तु ।

अब झांझरीजीकी दूसरी बात सुनिये वे कहते हैं कि—

"सभी ग्रंथोंमें मुनियों द्वारा शूद्रों चाण्डालों और व्रत-भ्रष्टोंको उपदेश देनेकी बात पाई जाती है,जब वे जाप कर रहे हों और उसी समय कोई शूद्र या व्रतभ्रष्ट उनके सामने आ उपस्थित हो तो मुनि या श्रावकने आचमन या प्राणायाम द्वारा शुद्धि की हो ऐसा किसी महानुभावने देखा या सुना है क्या ? यह आचमन और प्राणायामका संबंध जैनियोंमें नयाही सुना है"

यहांपर भी झांझरीजीने सभी ग्रंथोंका दावा ठोंककर अपनी पूर्ण अनभिज्ञताका परिचय दिया है, पहलेतो इस २७ वीं चर्चामें मुनियोंका सर्वथा संबंध नहीं है, फिर यदि श्रावकोका ही माना जाय तो क्या शूद्र चाण्डाल व्रतभ्रष्टोंको हर समय उपदेश देनेका विधान है ? क्या सामायिक और जप करते समय और अहार करते समय या शौचादि निवृत्तिको जाते समय सभी स्थानोंमें उनका संसर्ग करना चाहिये ? क्या उन्हें उपदेश देनेका यह अर्थ है जैसे शूद्र और चाण्डालको उपदेश देनेका विधान है और थोडे अंतरसे बिठाकर उन्हें उपदेश दिया जा सकता है वैसे क्या चोंकके पास भी भोजन करते समय उन्हें बिठा लिया जा सक्ता है क्या ? शायद झांझरीजीके लिये तो यह बात भी इष्ट ही हो ? जो हो। हद हो गई इस कुतर्कणाकी ! रही सुननेकी बात और देखनेकी बात सो सुनानेके लिये तो चर्चासागर ग्रंथही है, आप मानो तब न ? आप तो अपनी धर्मकर्मशून्य बुद्धिके सामने अपने पूर्वजोंकी बात भी सुनने और माननेके लिये तय्यार नहीं हैं।

रही देखनेकी बात सो यदि देखना चाहते हों तो दक्षिणमें चले जाइये। वहां आचमन और प्राणायाम द्वारा शुद्धि करनेवाले आपको अनेक मिलेंगे। यदि आपने क्रियाकाण्ड या शुद्धि प्रकारको छोड़ दिया है तो क्या सबोंने छोड़ दिया है ?

रात्रिमें आचमनका निषेध ।

रही रात्रिकी बात सो भाई हर समय हर विधिका विधान नहीं है, समय परही नियत विधि उपयुक्त होती है ।

पव्वदिण्णेणवयेसुवि ण दंत्तकट्ठं ण आचयं तप्पं
ण्हाणंजणणस्साणं परिहारो तस्स सण्णेओ ॥

(इन्द्रनन्दिसंहिता पत्र २ श्लोक १४)

अर्थ—पर्व दिनोंमें अन्य व्रतोंके दिनोंमें लकडीकी दातोंन आचमन. तर्पण, स्नान, अञ्जन, नस्य इनका त्याग समझना चाहिये इससे रात्रिमें चतुराहार त्याग व्रतीकोलिये आचमनादि का निषेध सिद्ध हो जाता है ।

चर्चासागरमें यह साफ तो लिखा हुआ है कि यदि आच-मन और प्राणायाम न हो सकें अर्थात् उनके लिये उपयुक्त समय या योग्यता न हो तो जिनेंद्रदेवके दर्शन करके ही जप करना चाहिये । जिनेंद्रदेवका दर्शन करनेका विधान उन्हीं अवसरोंके लिये है जिनमें आचमन और प्राणायाम न हो सकें ।

आचमन और प्राणायामका सम्बंध जैनियोंमें नया ही सुना है ।

भाई झांझरीजी आपने और आपके समर्थकोंने कितने शास्त्र देखे हैं ? आपके लिये तो एक नहीं अनेकों नयी बातें मालूम होंगी, तो क्या वे सब अमान्य ठहर जायेंगी ?

शास्त्रोंमें आचमन और प्राणायाम दोनोंका विधान है देखिये—

आचार्य सोमदेव यशस्तिलकचम्पूशास्त्रमें शुद्धिप्रकरणमें लिखते हैं-

"बाहिर्विहृत्य सम्प्राप्तो नानाचम्य गृहं विशेत्"

(यशस्तिलकचम्पू छपा हुआ पत्र ३७२)

अर्थ-बाहरसे घूम फिरकर आनेवाला गृहस्थ बिना आचमन किये घरमें प्रवेश नहीं करे।

जिस प्रकार बाहरसे आकर हाथ पैर धोकर शुद्धता प्राप्त करनेकी पद्धति है उसी प्रकार मुखशुद्धिके लिये आचमनका विधान है। विना मुखादि शुद्धिके मंत्रोच्चारण करनेका एवं देवपूजाका गृहस्थ अधिकारी नहीं है ऐसा शास्त्रोंमें विधान पाया जाता है।

और भी प्रमाण-

"बहिरागतो नानाचम्य गृहं प्रविशेत्"

(आचार्य सोमदेवकृत नीतिवाक्यामृत छपा हुआ पत्र २५२)

अर्थात्-बाहरसे आया हुआ मनुष्य विना आचमन किये घरमें प्रवेश नहीं करै।

आचमनके लिये और भी प्रमाण-

आचार्य देवसेन लिखते हैं-

पुज्जाउवयरणाइय पासे सण्णिहिय मंतपुव्वेण।
ण्हाणेणं ण्हाइत्ता आचमणं कुणउ मंतेण॥

(भावसंग्रह पत्र ९४ श्लोक० ४२७)

अर्थ-पूजाके उपकरणोंको पासमें रख कर तथा, मंत्र पूर्वक स्नानसे स्नान करके और मंत्र से आचमन करे।

यह पूजा के प्रकरण में पूजा के लिये विधान है। जलसे स्नान तो पहले की गाथा में कहा जा चुका है यह मंत्र की मुख्यता से स्नान और आचमन विधि बताई गई है।

तावत्प्रातः समुत्थाय जिनं स्मृत्वा विधीयताम्।
प्राभातिको विधिः सर्वः शौचाचमनपूर्वकम्।

(भावसंग्रह वामदेव विरिचत पत्र १९३)

अर्थात् सवेरे उठकर जिनेन्द्र भगवानका स्मरण करे, पीछे समस्त प्रातःकालीन विधि शौच और आचमन पूर्वक करे। झांझरिजीने लिखा है कि आचमन और प्राणायाम का संबंध जैनियों में नया ही सुना है आगे और भी मूर्खता पूर्ण प्रलाप से भरी हुई बात झांझरीजी लिखते हैं–

"इससे मालूम होता है कि इसका लेखक जैनी नहीं है अथवा जैनधर्म से अनभिज्ञ है,,

झांझरीजी ने यदि आचमन और प्राणायाम का नाम तक नहीं सुना तो समझना चाहिये कि उन बातों का विधान यदि जैन ग्रंथोंमें आवे तो वे सब उन ग्रंथों के रचयित्ता आचार्य भी जैनी नहीं हैं या जैन धर्म से अनभिज्ञ हैं क्या यह छोटा मुँह बडी बात वाली बात नहीं है?

संस्कृत का तो अक्षर नहीं पढ़ा और हिन्दी भाषा के शास्त्रों का भी परिज्ञान नहीं किया, और फरमान देने चले बादशाही। झांझरीजीकी दशा ठीक ऐसी है जैसी कि अपने चारोंपांव पसारकर मानसरोवरका माप बताने वाले कूप मंडूक की होती है। कूप मंडूक समझता है कि

जब मैंने चारों पैर पसार दिये इससे बड़ा यदि मानसरोवर कोई बताता है तो बतानेवाला मिथ्या कहता है, इस कारण इससे बड़ा मानसरोवर हो ही नहीं सक्ता है। झांझरी जी भी कहते हैं कि जो कुछ मैंने सुना है उतना ही जैन धर्म है, जो मैंने नहीं सुना है वह जैनधर्म है नहीं और उसके कहने वाले भी जैनी नहीं हैं। ऐसी समझके लिये भला क्या कहा जाय?

अब लीजिये प्राणायाम काप्रमाण–

आचार्यवर्य शुभ चंद्राचार्य लिखते हैं–

सुनिर्णीतसुसिद्धान्तैः प्राणायामः प्रशस्यते।
मुनिभिर्ध्यानसिद्ध्यर्थं स्थैर्यार्थञ्चान्तरात्मनः॥

(ज्ञानार्णव छपाहुआ पत्र २८४)

अर्थ–जिन मुनियों ने सिद्धान्त का भले प्रकार निर्णय कर लिया है उन्होंने ध्यान सिद्धि के लिये और मनकी एकाग्रता के लिये प्राणायाम को ही प्रशंसनीय बताया है। अर्थात् ध्यानसिद्धि और मनःशुद्धि प्राणायामसे अच्छी तरह होती है।

और भी–

स्थिरीभवंति चेतांसि प्राणायामावलम्बिनाम्।
जगद्वृत्तं च निश्शेषं प्रत्यक्षमिव जायते॥
यः प्राणयाममभ्यास्ते स मंडलचतुष्टयम्।
निश्चिनोतु यतः साध्वी ध्यानसिद्धिः प्रजायते॥

(ज्ञानार्णव पत्र २८७ श्लोक १४-१५)

अर्थात् जो प्राणायाम करते हैं उनके चित्त स्थिर हो जाते

हैं और जगतके वृत्तान्त प्रत्यक्षके समान मालूम हो जाते हैं। प्राणायाम को करता है वह पवन मंडल के चतुष्टय का निश्चय करता है और उसी से भले प्रकार ध्यान की सिद्धि होती है।

प्राणायाम के भेद–

त्रिधा लक्षणभेदेन संस्मृतः पूर्वसूरिभिः
पूरकः कुंभकश्चैव रेचकस्तदनन्तरम् ।

(ज्ञानार्णव पत्र २८५ श्लो. ६)

अर्थ–पूर्वाचार्योंने इस पवनके स्तंभनस्वरूप प्राणायामको लक्षण भेदसे तीन प्रकारका कहा है। एकका नाम पूरक है, दूसरेका कुंभक और तीसरेका रेचक है।

इन सब भेद प्रभेदोंका वर्णन आगे इसी शास्त्रमें बहुत विस्तारसे अनेक श्लोकोंमें कहा गया है।

इस प्राणायामका स्वरूप केवल आचार्य शुभचन्द्रने ही लिखा हो ऐसा नहीं है किन्तु अन्य अनेक आचार्योंने भी इस प्राणायामका वर्णन बहुत विस्तारसे किया है। जैसा कि ज्ञानार्णवमें कहे हुए 'उक्तं च' इस कथनसे भली भाँति सिद्ध है।

यथा–

समाकृष्य यदा प्राणधारणं स तु पूरकः
नाभिमध्ये स्थिरीकृत्य रोधनं सतु कुंभकः ॥
यत्कोष्ठादतियत्नेन नासाब्रह्म पुरातनैः ।
बहिः प्रक्षेपणं वायोः स रेचक इति स्मृतः ॥

ये दोनों श्लोक ज्ञानार्णवमें "उक्तं च" करके लिखे हैं इससे सिद्ध होता है कि ये श्लोक प्राणायामके इस ज्ञानार्णवसे भी पहलेके हैं।

इसके सिवा मुनिराज नागसेन विरचित तत्त्वानुशासनमें भी इस प्राणायामका निरूपण किया गया है देखिये—

आकारं मरुतापूर्य कुंभित्वा रेफवन्हिना।
दग्धा स्ववपुषा कर्मस्वतां भस्म विरेच्य च॥

(तत्वानुशासन छपा पेज १६श्लोक १८३)

पूरक, कुंभक, रेचकादिक रूपसे प्राणायामका निरूपण अन्य शास्त्रोंमें भी पाया जाता है। परंतु यहां अधिक प्रमाण देनेसे लेख बढ़ जायगा इसलिये उन सब प्रमाणोंको छोड़ दिया गया है।

उपर्युक्त कथनसे यह बात अच्छीतरह सिद्ध हो चुकी कि ध्यानसिद्धि, मनकी एकाग्रता, चित्तशुद्धि आदि कर्मोंके लिये यथा स्थान प्राणायाम और आचमनका उपयोग किया जाता है। मुनियोंके लिये प्राणायामका ही विधान है परंतु श्रावकके लिये प्राणायाम और आचमन दोनोंका विधान है। क्योंकि मुनियोंके लिये आचमनकी योग्यता और उपयोगिता दोनोंका निषेध है। इसी लिये चर्चासागरमें श्रावककेलिये ही उक्त विधान किया गया है।

और भी प्रमाण—

आचार्य अकलंकदेवविरचित प्रतिष्ठापाठमें इस प्रकार लिखा है—

ततः उपविश्य पूर्ववदाचमनं कृत्वा ओंह्रीं असिआ उसाय नमः स्वाहा अनेन पंच गुरूणां त्रिवारं जलादि अर्घ्यप्रदानं विधाय पुनराचमनं कृत्वा पंचदश तर्पणानि कुर्यात् ओं ह्रीं अर्हद्भ्यः स्वाहा ओं ह्रीं सिद्धेभ्यः स्वाहा आदि।

(अकलंक प्रतिष्ठा पाठ पत्र ७२ लिखित

अर्थ—फिर बैठकर पहलेके समान आचमन करके ओंह्रीं असिआ उसाय नमः स्वाहा इस मंत्रको बोलकर पंच परमेष्ठियोंको तीनवार जलादि अर्घ्य देकर फिर आचमन करके पन्द्रह तर्पण करे ओं ह्रीं अर्हद्भ्यःस्वाहा ओं ह्री सिद्धेभ्यः स्वांहा इत्यादि पन्द्रह तर्पण मंत्र हैं।

इसी प्रकार पत्र ७१ में भी आचमन और प्राणायाम की विधि है—

"अगुंष्ठानामिकाभ्यां नासाविवरणद्वयं संवृत्य कुंभके योमं कुर्वन्नेव णमोअरहंताणं णमो सिद्धाणं इत्यादि"

(अकलंकप्रतिष्ठापाठ पत्र ७१)

इत्यादि प्रकरणसे देख लेना चाहिये।

और भी प्रमाण—

हस्ते निपात्य वार्धारां करोम्याचमनक्रियाम्। आ ह्रीं इवीं क्ष्वीं वं मं हं सं तं द्रां द्रीं हं सः स्वाहा इति आचमन मंत्रः।

(आचार्यनेमिचन्द्र प्रतिष्ठापाठ छपा हुआ पत्र ६७५)

यह आचमन मंत्र है।

व्रतभ्रष्ट और शूद्रके दर्शनका निषेध

व्रतभ्रष्ट और शूद्रके दर्शन पूजा जप आदि आवश्यक क्रियाओंके साधन समयमें निषिद्ध हैं इस बातके लिये भी अनेक शास्त्र प्रमाणभूत हैं। देखिये—

"अयत्याचारा गृहस्थधर्मादपि पतिता उभयभ्रष्टा वंदितव्याः ते लोकाः, तन्नामग्रहणं तन्मुखदर्शनं प्रभात काले नः कर्तव्यं,इष्टवस्तु भोजनादि विघ्नहेतु त्वात्, ते जिनस्नपनपूजादानादि सद्धर्म घातका ज्ञातव्याः।"

[षट्प्राभृतादिसंग्रह छपा हुआ आचार्यवर्य कुन्द कुन्द स्वामीके मोक्ष प्राभृतकी आचार्यवर्य श्रुतसागर विरचित संस्कृत टीका]
पत्र ३०

अर्थ—जो मुनिधर्म नहीं पालनेवाले हैं तथा गृहस्थ-धर्मसे भी पतित हैं वे दोनों धर्मोंसे भ्रष्ट समझने चाहिये ऐसे भ्रष्ट लौंका कहलाते हैं। प्रातःकालमें न तो ऐसे व्रतभ्रष्टोंका नाम लेना चाहिये और न उनका मुख देखना चाहिये और प्रातःकालमें ऐसे व्रतभ्रष्टोंका मुख देखनेसे और नाम लेनेसे इष्ट वस्तु और भोजनादि प्राप्तिमें विघ्न हो जाता है, वे व्रत-भ्रष्ट लोग जिनस्नपन, पूजा. दानादि सद्धर्मके बाधक हैं ऐसा समझना चाहिये।

उपर्युक्त कथनसे यह बात भलीभांति सिद्ध है जब कि प्रातःकाल व्रतभ्रष्टोंका नाम और दर्शन हानिकारी है तब पूजा जप आदि मंगलमय धर्मकर्मोंमें खासकर एकांतमें सिद्ध

करने योग्य जपकार्यमें उनका संसर्ग अवश्यही जपकार्यमें बाधा पहुंचाने वाला है इसीलिये आचार्योंने व्रतभ्रष्ट और शूद्रोंके संसर्गका जपादि अनुष्ठानोंके समय निषेध किया है।

और भी प्रमाण–

"असंजातान्यसंसर्गः सुधीर्देवानुपाचरेत्।"

(यशस्तिलकचम्पू पत्र ३७२)

अर्थात् अन्यके संसर्गसे रहित होकर बुद्धिमान पुरुष भगवानकी पूजा करै।

और भी प्रमाण–

चंडलादिक नरजिते, हीनकरमकरतार।
तिनहि लखत वचन हि, सुनत अन्तराय निरधार॥

क्रियाकोष छपाहुआ पत्र ४५ किसनसिंह कृत।

अर्थ—जो चांडाल आदि मनुष्य हीन कर्म करनेवाले हैं उन्हें देखनेसे और उनके वचन सुननेसे अंतराय होजाता है।

इस क्रियाकोषके कथनसे भी स्पष्ट है कि चाण्डालादि शूद्रोंके देखनेसे अंतराय होजाता है।

कहिये झांझरीजी! आचार्य सोमदेव, आचार्य देवसेन, आचार्य श्रुतसागर, मुनिराज नागसेन, आचार्य शुभचंद्र आदि परम पूज्य आचार्योंने आचमन, प्राणायाम, व्रतभ्रष्टके दर्शनका निषेध आदि बतलाया है सो क्या आपके लेखानुसार इन सबोंको जैनी नहीं समझा जाय या इन्हें जैन धर्मसे अनभिज्ञ समझा जाय? क्या आपकी लेखनीसे आचार्योंका भारी अविनय नहीं हुआ है?

यदि आप इतने प्रमाण देखकर अबभी अपने लेखपर पश्चात्ताप करेंगे तो वह आपकी सरलताही समझी जायगी। परंतु आप जैसे पुरुषोंसे हमें वैसी आज्ञा प्रतीत नहीं होती है अस्तु।

चर्चा नं० १३७

किस ओर मुखकर भगवानकी पूजा करनी चाहिये ?

इस १३७ वी चर्चामें, चर्चासागर ग्रंथके संग्रहकर्ता पं० चंपालालजीने उमा स्वामी श्रावकाचारके श्लोक प्रमाणमें देकर यह बतलाया है कि भगवानकी पूजा पूर्वमुख या उत्तर खड़े होकर करनी चाहिये मुख और विदिशाओंमें मुखकर पूजन करनेसें अनेक हानियां भी बताई हैं. चर्चासागरमें इसका कथन इसप्रकार है—

"पूर्व उत्तर दिशाओंको छोड़कर बाकीकी छह दिशाओंकी ओर मुख करके जो भगवानकी पूजा करते हैं वे उमास्वामीके वचनोंके विरुद्ध चलते हैं क्योंकि उमास्वामीने पूजा करनेके लिये दोही दिशाओंकी ओर मुंह करना बतलाया है, बाकी दिशाओंका निषेध किया है पहला दोष तो यह है। दूसरा दोष यह है उचित वा शुभ कार्योंके लिये दोही दिशायें उत्तम मानी गई हैं क्योंकि तीर्थंकर आदि भी इन दोही दिशाओंकी ओर मुख करके विराजमान होते हैं, इन दो दिशाओंको छोड़कर बाकी दिशाओंकी ओर मुख करके भगवानके विराजमान होनेका अथवा शुभ कार्योंके करनेका शास्त्रोंमें कही विधान नही आया है"

ये पंक्तियां चर्चासागर ग्रंथकी हैं पाठकगण, विचार करें कि इस कथनमें कौनसी शास्त्र विरुद्ध बात है ? कितनी अच्छी युक्ति ग्रंथसंग्रहकर्ताने दी है कि भगवान भी पूर्व और उत्तर इन दो दिशाओंकी ओर मुख कर विराजमान होते हैं तथा और भी शुभकार्य इन दो दिशाओंकी ओर मुखकर किये जाते हैं।

भाई झांझरीजी इसे अंधेर बताते हैं। और यह भी कहते हैं कि लोग चौकीके अगल बगल कहीं भी खडे होकर किधर भी मुखकर पूजा करते हैं आदि, ।

हम उनसे कहते हैं कि लोग जो कुछ करते हैं वह उनकी क्रिया कही जायगी जो वे करते हैं सो ही शास्त्रीय मार्ग नहीं कहा जा सक्ता ।

रही चतुर्मुख प्रतिमाकी बात सो वह विशेष बात है उसके लिये विधान भी विशेष है. चतुर्मुख प्रतिमाके सामने किधर भी मुखकर पूजन किया जा सक्ता है ऐसा विधान है परंतु सामान्य मार्ग प्रतिमाके विराजमान करनेका पूर्व या उत्तर इन दो दिशाओंके लिये ही है । इसलिये पूजकके लिये भी इन्हीं दो दिशाओंका विधान है। यदि समुदायमें या जगह कम होनेसे पूजा करनेवाले कहीं भी खडे होकर पूजा करलें तो वह निर्वाह कर लेना अलग बात है।

शास्त्रकारोंने पूजकके लिये दो दिशाओंकी ओर मुख करनेका ही विधान किया है देखिये—

"पूर्वाशाभिमुखो विद्वानुत्तराभिमुखोऽथवा।
पूजां श्रेयोऽथवा जाप्यं सुधीः कुर्यादहर्निशम् ॥
(विद्यानुवाद लिखित पत्र ८३)

अर्थ—पूर्व दिशाकी ओर मुख करके अथवा उत्तर दिशाकी ओर मुख करके विद्वान् पुरुष पूजा अथवा जपको सदैव करै यही श्रेयस्कर है।

और भी प्रमाण—

आचार्यवर्य सोमदेव लिखते हैं—

"उदङ्मुखं स्वयं तिष्ठेत् प्राङ्मुखं स्थापयेज्जिनम्।
पूजाक्षणे भवेन्नित्यं यमी वाचंयमक्रियः ॥
प्रस्तावना पुराकर्म स्थापना सन्निधापनम्।
पूजा पूजाफलं चेति षड्विधं देवसेवनम् ॥
("यशस्तिलकचम्पू पत्र ३८२)"

अर्थ—पूजा करनेवाला व्रती पुरुष उत्तरमुख होकर स्वय खड़ा होवे और पूर्वमुख जिनेंद्र भगवानको स्थापन करे वचनको संयमित (मौन) रखकर सदैव इसी पद्धतिसे पूजन करे। प्रस्तावना पुराकर्म (जिनेंद्र भगवानूका अभिषेक) स्थापना सन्निधी करण पूजा पूजाका फल ये छह भेद देवपूजाके हैं। प्रतिदिन इन्हीं छह भेदोंसे किया हुआ पजन पूर्ण पूजन कहलाता है।

जो लोग पूजनके साथ अभिषेक क्रियाको जरूरी नहीं समझते हैं उन्हें भी आचार्य सोमदेवके वचनोंपर ध्यान देकर प्रतिदिन अभिषेक पूर्वक ही पूजन करना चाहिये।

यहांपर नित्य पजाके प्रकरणमें पूजा करने वाला उत्तर तरफ मुँह करके खड़ा हो इसका विधान किया गया है।

यदि प्रतिमाका मुख उत्तर मुख हो तो पूजा करनेवाला पूव मुख करके खड़ा हो यह अर्थ भी उपलक्षणसे निकलता है। जैसा कि अन्य ग्रंथोंसे स्पष्ट है।

और भी प्रमाण—

तिट्ठहि सयं पुज्जा समये उदीचिमुहो जिणंदुपुव्वमुहं संठाप्प हवइ मोणी णिच्चं वस्साच्छिदाणण ॥

इन्द्रनदि संहिता पत्र ३वी १)

पूजाके समयमें भगवानको पूर्व मुख स्थापन करें और स्वयं उत्तर मुख खड़ा हो तो तथा मौन धारण कर और वस्त्रसे मुखको ढककर पूजा करै।

और भी प्रमाण—

पूरव उत्तर दिशि सुखकार पूजक पूर्व करै मुखसार। जिन प्रतिमा पूरब जो होय पूजक उत्तर दिशि को जोय। जो उत्तर प्रतिमा मुख ठानि तो पूरब मुख सेवक जान। श्री जिन चैत्य गेहमें एम करै भविक पूजा धरि प्रेम।

क्रियाकोष छपाहुआ किसनासिंह कृत पत्र ९८ छद ९५।९६।

अर्थ—पूजा करनवालेको पूरवमुख और उत्तरमुख करके पूजा करनी चाहिये। यदि प्रतिमाका मुख पूर्वकी ओर हो तो पूजा करनेवाला उत्तरमुख करके पूजा करै यदि प्रतिमाका मुख उत्तरकी ओर हो तो पूजा करनेवालाका पूर्व

मुख करके पूजा करें। इस प्रकार जिन मंदिरमें पूजा करने-वाला प्रेमपूर्वक पूजा करें।

प्रतिमाका मुख पूर्व और उत्तर दो ही तरफ रहता है ऐसा भी विधान है—

"प्रतिमा मुख पूरव दिसि करै
अथवा उत्तर दिशि मुख धरै"

(क्रियाकोष पत्र ९९)

अर्थ—स्पष्ट है जब प्रतिमाका मुख पूरब अथवा उत्तर होता है तो पूजा करनेवालेके लिये भी उसी प्रकारका विधान है।

और भी प्रमाण–

"वेदी दक्षिण ओर उत्तर मुख जानियं
अथवा पूरब ओर सुसन्मुख मानिये
मौन गहे मुखढाक प्रफुल्लित गात है
पूजत श्रीजिनदेव सुमन हरषात है"

(तेरह द्वीप पूजन विधान छपा हुआ पत्र ७)

अर्थ—वेदीके दक्षिण ओर (यदि वेदी पूर्वमुख हो तो) उत्तरकी तरफ मुख करके पूजा करनी चाहिये अथवा भगवानके सामने पूर्वकी ओर मुखकर (यदि वेदी उत्तर मुख हो तो) पूजा करनी चाहिये।

जपके लिये भी पूर्व और उत्तर दिशाकी ओर मुख करना चाहिये।

पूर्वाशाभिमुखः साक्षादुत्तराभिमुखोऽपिवा ।
प्रसन्नवदनो ध्याता ध्यानकाले प्रशस्यते ॥

(आचार्य शुभचन्द्र विरचित ज्ञानार्णव पद्य २८१)

अर्थ–ध्यान करनेवाला प्रसन्नचित्त होकर यातो पूर्व दिशाकी ओर मुख करै अथवा उत्तर दिशाकी ओर मुख करै, इस रीतिसे जो ध्यान किया जाता है वह प्रशंसनीय ध्यान कहा जाता है ।

और भी प्रमाण–

"पूरबदिशि मुखकरि बुधवान जाप करै मन वचतन जानि"
जो पूरव कदाचि टारि जाय उत्तर सन्मुख करि चित-लाय
दक्षिण दिशि पश्चिम दुहुं यथा जापकरन वरजी सर्वथा

(क्रियाकोष छपा हुआ किशनसिंह कृत पुत्र ९८ ।

अर्थात्–बुद्धिमान पुरुष पूर्वदिशाकी ओर मुखकर मन-वचन कायसे जाप करै, यदि पूर्व दिशाकी ओर मुख न कर सके तो उत्तर दिशाकी ओर अवश्य करलेवे, ।

पूर्व और उत्तर इन दो दिशाओंको छोड़कर दक्षिण दिशा और पश्चिम दिशाकी ओर मुख करना जपके लिय सर्वथा वर्जित है । जैसे जपके प्रकरणमें जपके लिये दक्षिण पश्चिम दिशा निषिद्ध है उसी प्रकरणमें पूजाके लिये भी दक्षिण पश्चिम मुख करना सर्वथा वर्जित है ।

पूजाके लिये ही क्यों पूजा निमित्त स्नानके लिये भी और वस्त्र पहननेके लिये भी पूर्व और उत्तर मुख करनेका विधान है, देखिये—

पूजा निमित्त स्नान आचरै, सो पूरवदिसि मुखको करै,
धौतवस्त्र पहरै, तन तवै, उत्तरदिसि मुखकरि है जवै।

अर्थात् पूजाके लिये स्नान करै तो पूर्वदिशाको मुखकरके करै, और जब धुले हुए वस्त्र पहरे तब उत्तरकी तरफ मुख करके पहरै। (क्रिया कोश)

इसी संबंधमें क्रियाकोषमें एक श्लोक भी उक्तं च करके दिया है वह यह है—

स्नानं पूर्वमुखीभूय, प्रतीच्यां दंतधावनम्।
उदीच्यां श्वेतवस्त्राणि पूजा पूर्वोत्तरामुखी॥

अर्थात्—स्नान तो पूर्व मुखकर करना चाहिये, दँतौन पश्चिम मुख करके करनी चाहिये, और शुक्ल वस्त्र उत्तर दिशामें मुखकर पहनने चाहिये। तथा पूजा पूर्व और उत्तर मुख करके ही करनी चाहिये।

इसी संबंधमें और भी धर्मसंग्रह श्रावकाचार आदि ग्रंथोंके प्रमाण दिये जासक्ते हैं, परंतु अधिक प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं है। उपर्युक्त प्रमाणोंसे यह बात भली भांति सिद्ध हो चुकी कि पूजा पूर्व और उत्तर दिशाकी ओर मुख करके ही करना चाहिये।

झांझरीजीने इसे अंधेर बताया है और इन शास्त्रविहित

बिधानोंको अंधेर बताकर चर्चासागर ग्रंथको अप्रमाण बताया है, परंतु झांझरी और उनके साथी यदि इन उपर्युक्त प्रमाणोंके विरुद्ध कथन आगमसे बतावें तबतो उनका कहना ठीक समझाजायगा नहीं तो उनका सब कथन उन्मत्त प्रलापवाद अग्राह्य ठहरता ही है।

जब शस्त्राकारोंने पूजा और जपादि कार्योंमें पूर्व और उत्तर दिशाके सिवा अन्य दिशाओंकी ओर मुख करना निषिद्ध बताया है तब इससे स्पष्ट सिद्ध है कि उधर मुख करना हानिकारक है।अन्यथा दो दिशाओंका ही विधान क्यों?

चर्चा नं० १६८

पितृतर्पण पर विचार।

इस चर्चा नं० १६८ में चर्चासागर ग्रंथमें सिर्फ यह बात लिखी है कि पूजा दान स्वाध्याय होम पितृतर्पण आदि कार्यों के समय तिलक लगाना चाहिये।

तिलक किस २ समय लगाना आवश्यक है इसीके लिये एक प्रमाणमें पितृतर्पणका नाम भी आगया है।

पितृ तर्पणका नाम सुनकर झांझरीजी जैसे लोगोंका चौंक पड़ना और अपनी छोटी समझके कारण समाजको भड़का देना साधारण बात है। वे कहते हैं कि "जैनियोंमें यह पितृतर्पण (श्राद्ध) कबसे चल पड़ा?"

जैन धर्ममें जितने प्राचीन ग्रंथ उपलब्ध हैं क्या कहीं पितृतर्पण करना लिखा है ? जैनियोंमें यह रीति कहीं प्रच-

लित नहीं है मालूम होता है यह नया विधान स्वार्थके लिये प्रचलित किया जा रहा है ?

ये रतनलालजी झांझरीकी पंक्तियां हैं।

पितृतर्पण क्या है ।

भाई, झांझरीजी, किसी चीजका एकसा नाम आने से उसे दूसरे की समझना अपनी नहीं समझना अथवा उसी नाम से दूसरे मतोंमें उसका भिन्न स्वरूप देखकर अपने यहां भी उसका वही अर्थ समझना यह भूलही नहीं, किंतु पूरी नासमझी है।

यदि समान नामसे ही विरोध है तबतो मुनि मोक्ष चारित्र तप आदि नाम और क्रियाएँ अन्यमतोंमें भी मिलती हैं और दि० जैनियोंमें भी वे ही नाम हैं तो क्या समान नाम होनेसे वे सिद्धान्त दि० जैनियोंके नहीं समझे जायगें या उनका स्वरूप वैसाही समझा जायगा जैसा अन्य मतियोंने मान रक्खा है ? यदि नहीं तो फिर इस पितृतर्पण शब्दसे ही क्यों चौंक पड़े ?

भाई ! दि० जैनियोंके यहां भी पितृतर्पण है परन्तु उसका अर्थ जैसा अन्यमती करते हैं या समझते हैं वैसा दि० जैन हरगिज नहीं मानते हैं अन्यमती लोग पितृ तर्पणका अर्थ यही करते हैं कि मरे हुए पिता आदि अपने कुटुम्बियोंको भोजनादि देकर उन्हें संतुष्ट किया जाय। उनका मत है कि ब्राह्मणोंको खिलाया हुआ या कौओंको खिलाया हुआ भोजन उन तक पहुंचता है और उससे वे प्रसन्न होते हैं।

दि० जैन सिद्धान्त इस क्रियाको सर्वथा मिथ्यात्व मानता है, यह असंभव बात है कि कौओंको खिलानेसे पितर सन्तुष्ट होते हैं ऐसी क्रियाओंको करनेवाला मिथ्यादृष्टि है इसमें कोई संदेह नहीं है।

दि० जैन शास्त्रोंमें तो पितृतपर्णका अर्थ है वह ऐसा है जिसे हम सब सदैव करते हैं और जिसकी अनुमोदना करते हैं।

श्राद्धका अर्थ दि० जैन शास्त्रोंके अनुसार—

श्राद्धपूर्वक दान देनेका है, नकि पितरोंको संतुष्ट करना।

देखिये—आचार्य सोमदेवने लिखा है—

मर्त्येषुचेत्सद्मसु नाकिनां वा विधाय पुण्यं पितरः प्रयाताः तेषामपेक्षा द्विजकाकभुक्तैः पिण्डैर्भवेद्वर्ष-कृतैर्नकापि ॥

गत्यन्तरे जन्मकृतां च पितॄणां स्वकर्मपाकेन पुराकृतेन।
तत्रापि किं तेन न दृष्टमेतत्तृप्तिः परेषां परतार्पणीति॥

(यशस्तिलकचम्पू उत्तरार्द्ध छपा हुआ पत्र १०७)

अर्थ— अपने पुण्यके अनुसार पितर लोग पिता माता आदि अपने बन्धुगण, मनुष्योंमें या देवोंमें पैदा हो जाते हैं अर्थात् मनुष्यगति या देवगतिमें उत्पन्न हो जाते हैं उनके लिये साल २ पीछे कौआ और ब्राह्मणोंको खिलानेसे कुछ फायदा नहीं है अर्थात् उन्हें खिलानेसे और परलोकमें जानेवाले पितरोंका कोई सम्बन्ध नहीं है।

तथा—

अपने पूर्व कर्मके उदयसे दूसरी पर्यायमें गये हुए पितर लोग इस ब्राह्मण भोजन आदिसे कभी तृप्त नहीं हो सके उनका इस ब्राह्मण भोजन, काक भोजनसे कोई सम्बन्ध नहीं है किंतु ब्राह्मण और काक ही संतुष्ट होते हैं यह बात निश्चित है।

इन श्लोकोंसे आचार्य महाराजने पितृतर्पण अथवा श्राद्ध जो अन्य मतियोंमें प्रचलित है उसका बड़े जोरोंसे खण्डन कर दिया है।

दि० जैन सिद्धान्तानुसार पितृतर्पण (श्राद्ध) का अर्थ।

इसके आगे वे पितृतर्पणका दि० जैन सिद्धांतानुसार अर्थ बताते हुए कहते हैं—

जन्मैकमात्माधिगमो द्वितीयं भवेन्मुनीनां व्रतकर्मणा च। अमी द्विजाः साधु भवन्ति तेषां सन्तर्पणं जैनजनः करोतु॥

(यशस्तिलकचंपू पत्र १०८) उत्तरार्द्ध

इस श्लोककी आचार्यवर्य श्रुतसागर विरचित संस्कृतटीका इस प्रकार है—

"एकं जन्म आत्माधिगमः आत्मलाभः उत्पत्तिरेवेत्यर्थः। गर्भान्निसरणमित्यर्थः। द्वितीयं जन्मव्रतकर्मणा च दीक्षाकर्मणा मुनीनां यतीनां भवेत् सञ्जायते अमी एते मुनयो द्विजा ब्राह्मणाः साधु भवन्ति, समीचीन-

तया सञ्जायते तेषां मुनिलक्षणानि द्विजानां सतर्पणं चतुर्विधेन दानेन संप्रीणनं जैनजनः आर्हतः लोक करोति विदधाति ।

(यशस्तिलकचंपू आचार्य श्रुतसागरीटीका)

अर्थात् एक जन्म तो गर्भसे निकलना माना जाता है और दूसरा जन्म व्रतक्रिया और दीक्षाक्रियाद्वारा मुनियोंका माना जाता है। इसीलिये ये मुनिगण दो जन्मवाले द्विज ब्राह्मण हैं यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है । उन मुनिरूप द्विजोंका तर्पण जैनी लोग अर्हन्त भगवानके मतके उपासक लोग करते हैं अर्थात् उन मुनियोंको चार प्रकारका दान देकर संतुष्ट करते हैं ।

इस श्लोकसे यह बात सिद्ध हो जाती है कि मुनियोंको ही उत्तम ब्राह्मण अर्थात् द्विज कहा जाता है उन्हें आहारादि दान देना ही श्राद्ध है या पितृतर्पण है ।

इसी सम्बंधमें आचार्य सोमदेव और भी कहते हैं–

निर्निमित्तं न कोपीह जनः प्रायेण धर्मधीः ।
अतः श्राद्धादिकाः प्रोक्ताः क्रियाः कुशलबुद्धिभिः॥

(यशस्तिलकचम्पू पत्र १०८)

अर्थात् बिना निमित्तके कोई भी पुरुष धर्ममें बुद्धि नहीं लगाता है इसीलिये चतुर बुद्धिवालोंने(आचार्योंने) श्राद्धादिक क्रियाएँ बतलाई हैं ।

श्रद्धापूर्वक दान देनेका नाम श्राद्ध है इसी बातकी सिद्धि आचार्य रविषेण विरचित पद्मपुराण द्वाराभी होती है देखिये–

सुगन्धिजलसम्पूर्णं पात्रमुद्धृत्य भामिनी ।
देवी वारि ददौ राजा पादावक्षालयन्मुनेः ॥
शुचिश्चामोदसर्वाङ्गस्ततो राजा महादरः ।
क्षैरेयादिकमाहारं सद्गन्धरसदर्शनम् ॥
हेमपात्रगतं कृत्वा श्रद्धया परयान्वितः ।
श्राद्धं स्म परिवेवेष्टि पात्रे परममुत्तमे ॥

(पद्मपुराण छपा हुआ पत्र ४२० तृतीया खंड)

अर्थ—सुगंधित जलसे भरे हुए पात्रको उठाकर रानीने राजाको जल दिया और राजाने मुनिराज रामचंद्रके चरणोंका प्रक्षालन किया पीछे वह पवित्र हर्षयुक्त भक्तिशाली राजा सुगंधित और रसयुक्त आहारको सोनेके पात्रमें रख कर उत्कृष्ट श्रद्धा सहित होकर उस श्रद्धापूर्वक दानको श्राद्धको परमोत्कृष्ट पात्र मुनिराज रामचन्द्को देता हुआ ।

यहां पर श्राद्धका अर्थ यह स्पष्ट रीतिसे बता दिया गया है कि श्रद्धापूर्वक जो मुनियोंको दान दिया जाता है वह श्राद्ध कहा जाता है ।

इस कथनसे यह बात बिल्कुल खुलासा हो जाती है कि शास्त्रकारोंने श्राद्धका अर्थ—श्रद्धापूर्वक दान देना किया है । यही अर्थ शास्त्रोंमें मिलता है । यथा—

श्रद्धयान्नप्रदानं तु सद्भ्यः श्राद्धमितीष्यते ।

अर्थात् श्रद्धापूर्वक सत्पुरुषोंको अन्न दान देना श्राद्ध कह-लाता है ।

तथा–

" श्रद्धया दीयते दानं श्राद्धमित्यभिधीयते "

अर्थात् श्रद्धापूर्वक दान देना ही श्राद्ध कहा जाता है। इसी अर्थका स्पष्टीकरण आचार्य सोमदेव और आचार्य रविषेणने यशस्तिलकचम्पूमें तथा पद्मपुराणमें किया है जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है।

तर्पणका अर्थ

तर्पणका अर्थ शास्त्रकारोंने दान देनेका किया है। जैसा कि आचार्य सोमदेवने नीति वाक्यामृतमें लिखा है–

तानि पर्वाणि येष्वतिथिपरिजनयोः प्रकामं संतर्पणम्

(नीतिवाक्यमृत छपा हुआ पत्र २८९)

इसकी संस्कृत टीका इस प्रकार है–

तानि पर्वाणि ज्ञेयानि, येषु अतिथिपरिजनयो–स्तर्पणं दानं दीयते।

अर्थात् पर्व उन्हींका नाम है जिनमें आतिथि (साधु) और परिजनोंका तर्पण किया जाय अर्थात् उन्हें दान दिया जाय।

और भी प्रमाण–

नित्यं समयिकादीनि, पंच पात्राणि तर्पयेत्।
दानादिनोत्तरोत्तरगुणरागेण सद्गृही।

(धर्मसंग्रह श्रावकाचार पत्र २४६ छपा हुआ)

अर्थात् दानमानादि द्वारा पंच पात्रोंको सद्गृहस्थ सन्तो-

पित करे। समयी श्रावक साधु सूरि और समयदीपक ये पांच प्रकारके पात्र कहलाते हैं।

यथा–समयी, श्रावकः साधुः सूरिः समयदीपकः
तत्पुनः पंचधापात्रं आमनंति मनीषिणः ॥

(यशस्तिलक चम्पूपत्र ४०६)

पितृतर्पण या पात्रतर्पण।

पितृतर्पण कहा जाय या पात्रतर्पण कहा जाय दोनोंका एक ही अर्थ है। पात्रोंको दान देकर संतुष्ट करना यही तर्पण शब्दका अर्थ है। जैसा कि धर्म संग्रह श्रावकाचारमें कहा गया है–

"पंच पत्राणि तर्पयेत्"

पांच प्रकारके पात्रोंका सन्तुष्ट करै।

भाई झांझरीजी! अब तो तर्पण और श्राद्धका अर्थ आप जैन सिद्धान्तानुसार समझ गये होंगे और जैनियोंमें वरसी द्विवरसी आदिके नामसे श्राद्ध होता है यह भी आप समझ गये होंगे? और आचार्यवर्य सोमदेवके निरूपणसे यह भी समझे होंगे कि श्राद्ध जैनियोंमें कबसे चला है या अनादि है?

ब्रह्मा विष्णु महादेव को भी अकलंकदेवने नमस्कार किया है परंतु उनका स्वरूप और ही माना है। इसी प्रकार श्राद्धके विषयको भी जानना चाहिये।

आचार्य सोमदेव विक्रम सम्वत् ८८१ में हुए हैं।

आचार्य सोमदेवको हुए आज ११०७ वर्ष बीत चुके।

आचार्य सोमदेव अपने युगमें एक प्रखर पाण्डित्यधारण करनेवाले उद्भट-असाधारण आचार्य हुए हैं। उन्हें आचार्य शिरोमणिके नाम से कहा जाता है तथा गद्यपद्यविद्याधर चक्रवर्तियोंके भी आराध्य देव स्वामी सोमदेवसूरि कहे जाते हैं। ऐसा उल्लेख यशस्तिलकचंपूमें मिलता है।

आचार्य सोमदेवने अनेक महाशास्त्र रचे हैं—

कुछके नाम ये हैं।

यशस्तिलकचंपू, नीतिवाक्यामृत, अध्यात्मतरंगिणी, षण्णवतिप्रकरण, युक्तिचिन्तामणि. शब्दार्णव चंद्रिका, योग मार्ग, नीतिसार, पंचसंग्रह, भावसंग्रह आदि।

ऐसे धुरन्धर आचार्यशिरोमणि, जब स्पष्ट शब्दोंमें अन्य मतों द्वारा माने हुए श्राद्धका खण्डन करते हैं और जैन सिद्धान्तके अनुसार श्राद्धका अर्थ बताते हैं तब किसी भी समीचीन श्रद्धावान् जैन बंधुको जैन सिद्धान्त मान्य श्राद्धमें शंका नहीं हो सकती है।

केवल एक नाम होनेसे श्राद्धको अन्यमतोंकी प्रथा समझना भारी भूल है। यज्ञोपवीत भी अन्यमातियों में प्रसिद्ध होनेसे क्या जैन सिद्धांत निरूपित सिद्धांत नहीं माना जायगा आचार्य अकलंकदेव ने तो ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, कृष्ण आदि सबों को नमस्कार किया है।

झांझरी सरीखे तो उन्हें मिथ्यादृष्टि कहनेमें नहीं चूकेंगे जैसा कि कुदेवोंको मांसाहारी बतानेवाले आचार्य भगवज्जिन

सन सरीखों को वे पाजीपन बताने की भारी धृष्टता दिखा चुके हैं। परंतु आचार्य अकलंकदेव ने वीतरागी सर्वदा अर्हंत पदवाले ब्रह्मा विष्णु महादेव आदि को नमस्कार किया है नाम मात्र एक सरीखा होनेसे वस्तु स्वरूप जुदा २ हैं इसे शास्त्रज्ञ ही जान सक्ते हैं। झांझरीजी क्या समझें?

चर्चा नं० १७०

देवोंको मांसाहारी किस अपेक्षासे कहा गया है?

चर्चासागर ग्रंथमें चर्चा नं० १७० में सम्यग्दृष्टि देवोंके प्रकरणमें यह वर्णन किया है—

"श्रीमत् आदिपुराणके ३९ वें पर्वमें लिखा है कि तीर्थंकरोंके सिवाय विश्वेश्वरादिक और भी देव हैं जो शान्तिके करने वाले हैं। इन विश्वेश्वरादिकोंके सिवाय मांसाहारी क्रूर देव और भी हैं उनका त्याग कर देना चाहिये अर्थात् उन को नमस्कार पूजन आदि नहीं करना चाहिये ऐसा (आदि पुराणमें) लिखा है—यथा—

विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवताः शान्तिहेतवः।
क्रूरास्तु देवता हेया येषां स्याद्वृत्तिरामिषैः॥

(आदि पुराण)

यहां तक सब पंक्तियां चर्चासागरकी हैं इनमें ग्रंथकारने कुदेवोंके पूजन नमस्कार का निषेध किया है और आगे भी लिखा है कि—

"अन्य कुदेवादिक के माननेमें मिथ्यात्व वा हिंसाका दोष प्रत्यक्ष आता है इसलिये सम्यग्दृष्टि पुरुष उनको (कुदेवों) को कभी नहीं मानते हैं और न कभी मानना ही चाहिये।

इन पंक्तियों से भी कुदेवोंके पूजन नमस्कार का निषेध बतलाया गया है। इसी प्रसंगमें उन्होंने कुदेवोंको नमस्कार पूजन नहीं करनेमें हेतु दिया है कि कुदेव क्रूर होते हैं वे मांसाहारी होते हैं आदि।

स्व० पं० चंपालालजी ने कुदेवोंको मांसाहारी बताया है वह अपनी सम्मतिसे नहीं कहा है किंतु भगवाज्जिनसेनाचार्य कृत आदि पुराणजीका प्रमाण दिया है।

परंतु झांझरी जैसे पुरुषोंको तो अर्थका अनर्थ करके भी समाजको भड़काना है और चर्चासागरको अप्रमाण ठहराना है, इसलिये उन्होंने अपने पर्चामें लिखा है कि—

"जैनधर्मका यह अकाट्य सिद्धान्त है कि देवमात्रके कवलाहार नहीं होता है मात्र मानसीक आहारही होता है उनके मांसाहार बताना सिद्धान्तका लोप करना तो है ही, पर पाजीपन भी है, क्योंकि इससे देवी देवताओंके सामने बलि चढ़ाने वालोंकी बातोंकी पुष्टि होती है"

पाठक गण झांझरीजीका उन्मत्त प्रलाप देखिये. और अपनी मूर्खतापूर्ण बुद्धिके आधारपर जो उन्होंनें पाजीपन बतलाया है उसपर भी विचार किजिये कि वह पाजीपन चर्चासागर बनानेवाले चंपालालजीका ठहराता है या जिन भगवज्जिन सेनाचार्यने देवोंको मांसाहारी बताया है उनका ठहराता है?

क्योंकि चर्चासागरमें कुदेवोंको मांसाहारी आदि पुराणका प्रमाण देकर ही कहा गया है। पर्चाका लेखक भला आदमी चर्चासागरकी बुराई करनेमें और उसके कथनको जैन सिद्धांत विरुद्ध ठहरानेमें इतना मस्त होगया है कि उसे इतनाभी होश नहीं रहा है कि जो यह बात चर्चासागरकी है या चर्चासागरमें आदि पुराणका प्रमाण दिया गया है उसकी है ? विना कुछ भी विचार किये पाजीपन बताना अपनेको उसी कोटिमें रखलेना है। जो हो।

कुदेवोंके मांसाहार होता है यह बात आदि पुराणमें भगवज्जिनसेन स्वामीने लिखी है यथा— ।

विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवताः शान्तिहेतवः
क्रूरास्तु देवता हेया येषां स्याद्वृत्तिरामिषैः

(आदि पुराण १३९४ पत्र श्लो० २७)

इस श्लोकका यही अर्थ है कि विश्वेश्वरादिक देवही शांतिके कारण हैं, जिनकी वृत्ति मांसके द्वारा होती है वैसे क्रूर देवता (कुदेव) सर्वथा त्यागने योग्य हैं अर्थात् उन्हें नमस्कारादि करना पाप है यहांपर श्लोकके चौथे चरणमें

" येषांस्याद्वृत्तिरामिषैः "

यह पाठ है। आमिष नाम मांसका है. देखिये अमरकोष में लिखा है—

" पिशितं तरसं मांसं पललं क्रव्यमामिषम्"

(अमर कोष छपाहुआ मनुष्यवर्ग श्लोक ६३)

अर्थात् पिशित, तरस, मास, पलल, क्रव्य और आमिष ये छह नाम मांसके हैं।

कुदेवोंके लिये आदि पुराण कर्ता भगवज्जिन सेनाचार्यने लिखा है कि जिनकी वृत्ति मांससे है जब आचार्यने मांस (आमिष) शब्दका कुदेवोंके लिये प्रयोग कर दिया तब और कौनसी शंका रह जाती है ? मांससे वृत्ति करनेका अर्थ मांसाहारी ही यहां पर लिया गया है।

इसी बातको विद्वज्जनबोधकवालोंने भी लिखा है देखिये—

" जिनागम अपेक्षातो देवनिके मांसवृत्ति कहनाही नहीं बने परंतु स्मार्तनके सबही देव यज्ञमें हवन किया पशुका मांस भक्षण करे हैं ऐसा कहे हैं, तिनकी अपेक्षा कह्या है. तातें अर्हत देव सिवाय सबही देव नमस्कारादि करने योग्य नहीं ऐसा दृढ़ करावने निमित्त आमिषवृत्ति (मांसाहार) विशेषण दिखाया है।

विद्वज्जनबोधक छपा हुआ पत्र २१८

इस विद्वज्जनबोधकके कथनसे तो झांझरीजीकी बुद्धिमें शायद यह बात आ गई होगी कि देवोंको मांसाहारी आदि पुराण कर्ता आचाय महाराजने क्यों बताया है। विद्वज्जन बोधकमें उसी आदिपुराणके श्लोकका ही खुलासा है जो श्लोक ऊपर दिया गया है।

क्या अनेक महाशास्त्रोंके रचयिता परम पूज्य १०८ श्री आचार्य शिरोमणि भगवज्जिनसेन स्वामी इतना भी नहीं

जानते थे कि देवोंके मानसिक आहार होता है उनके मांसाहार होना असंभव है? परन्तु उन्होंने कुदेवोंको मांसाहारी बताया है सो क्यों?

इसके उत्तरमें इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि उन्होंने व्यवहारमें देवोंके मूर्तिमान् स्वरूपको लेकर परदेवोंकी अपेक्षासे ही कुदेवोंको मांसाहारी बताया है अर्थात् जो कुदेव जगत्में प्रसिध्द है जिनके सामने बलि दी जाती है ऐसे मांसाहारी चण्डी मुण्डी आदि कुदेवोंको नमस्कार नहीं करना चाहिये ऐसा कहा है। कोई पुरुष यक्षादिकोंके भवनोंमें पाताललोक आदिमें तो कुदेवोंको नमस्कार करने जाते ही नहीं हैं किंतु जिन कुदेवोंके नामसे मिथ्यादृष्टि लोग उन्हें पूजते हैं, नमस्कार करते हैं उन कुदेवोंको जैनी लोग नहीं पूजें और न ऐसे कुदेवोंको नमस्कार करैं यही आचार्य महाराज भगवज्जिनसेन स्वामीका अभिप्राय है।

"इस कथनसे देवताओंके सामने बलि चढानेवालोंकी बातोंकी पुष्टि होती है" यह कहना भी झांझरीजीका बिलकुल नासमझीका है।

उक्त आचार्य महाराजके कथनसे बलि चढ़ाने वालोंकी बातोंकी पुष्टि नहीं होती है किन्तु पूरा २ खंडन हो जाता है, क्योंकि आचार्यने बलि चढ़ानेवाले देवोंको कुदेव कहा है और उन्हें नमस्कार करनेका सर्वथा निषेध किया है। उन्हें नम-

स्कार करनेमें मिथ्यात्व बताया है, ऐसी अवस्थामें ऐसे कुदेवोंको मानना और उन पर बलि चढ़ाना इन बातोंका सर्वथा खंडन हो जाता है।

झांझरीजीने जो आचार्य भगवज्जिनसेन स्वामीके लिये 'पाजीपन' शब्दका प्रयोग किया है उसके लिये उन्हें प्रायश्चित्त और पश्चात्ताप दोनों करने चाहिये।

अन्य अनेक शास्त्रोंमें भी कुदेवोंको मांसाहारी आदि शब्दोंसे कहा गया है।

यशस्तिलक चम्पूमें चंड भारी देवताके लिये लिखा है—

प्रत्यवासोपकरणानि-भोजनभाजनानि, नरशिरःकरोटिभिः नराणां मनुष्याणां मस्तकास्थिभिः ॥

(यशस्तिलकचम्पू पत्र १५० पूर्वार्ध)

इसका अर्थ यह है कि उस चण्डमारी देवताके भोजन करनेके वर्तन मनुष्योंकी खोपडीके थे।

बताइये झांझरीजी, देवता तो मानसिक आहार करते हैं फिर आचार्य शिरोमणि सोमदेवसूरिने देवताके भोजनके वर्तन मनुष्योंकी खोपडीके कैसे बताये? क्या ऐसा कहनेमें कोई अपेक्षा है या नहीं? या आचार्य सोमदेव भी जैन सिद्धान्त नहीं समझते थे?

इस विषयमें अनेक प्रमाण हैं परंतु उन सबोंके देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। ऊपर जो खुलासा किया गया है उतना ही पर्याप्त है। अंधेके सामने तो रूप दर्शन कितना भी स्पष्ट क्यों न कराया जाय वह सब व्यर्थ है।

चर्चा नं० १८४

भूमिदान सुवर्णदान गौदान पर विचार।

[इस चर्चामें भी झांझरीजीने समाजको धोखेमें डाला है]

चर्चासागरमें इस १८४ वीं चर्चामें जो अन्यमती वैष्णवादि लोग गौदान सुवर्णदान भूमिदान आदि ब्राह्मणोंको दान करते हैं उस प्रकारके दानका बड़े जोरोंसे निषेध किया है, देखिये चर्चासागरकी पंक्तियां इस प्रकार हैं—

" और देखो दशवें तीर्थंकर श्रीशीतलनाथके अन्तरालमें एक भूतिशर्मानामके ब्राह्मणके एक मुण्डशालायन नामका पुत्र हुआ था, उसने बहुत विद्या पढ़ी थी, परन्तु मिथ्यात्वकर्मके तीव्र उदयसे वह जिन धर्मका तीव्र द्रोही था, उसने जिन धर्मके विरुद्ध बहुतसे शास्त्र बनाये और लोभके वशीभूत होकर अपनी आजीविकाके लिये "ब्राह्मणोंको कन्या आदि दश प्रकारके दान देना चाहिये, ऐसा वर्णन किया और उसमें बहुत पुण्य बताया। कन्या हाथी सुवर्ण घोडा कपिला(गौ) दासी तिल रथ भूमि घर ये दश प्रकारके दान ब्राह्मणोंको देने चाहिये इस प्रकार उसने महाहिंसाकी प्रवृत्ति करनेवाले कुत्सित दानोंका स्थापन किया"

" ऐसे पुरुषोंको जो दान बतलाया है वह हिंसादिक महापापोंका बढ़ानेवाला है जैन धर्मको धारण करनेवाले धर्मात्माओंको कभी ऐसा दान नहीं देना चाहिये "

(चर्चासागर पत्र ३०५)

ये सब पंक्तियां चर्चासागरकी हैं, पाठक ! अब आप

चर्चासागरके लेखक पं० चम्पालालजी क्या कहते हैं और झांझरीजी क्या कहते हैं सो देखलीजिये।

चर्चासागरके लेखक तो बड़े जोरदार शब्दोंमें कहते हैं कि जो अन्यमतियोंने गौदान सुवर्णदान भूमिदान आदि दान ब्राह्मणोंको देना बताया है सो वह कुत्सितदानों यानी खोटे दानोंका स्थापन है, ऐसे पुरुषोंको (ब्राह्मणोंको) दान देना हिंसादिक महापापोंको बढ़ानेवाला है, धर्मात्माओंको ऐसा दान कभी नहीं करना चाहिये आदि।

कहिये कितना जोरदार खण्डन है।

अब झांझरीजीने जो समाजको अपने पर्चे द्वारा धोखा दिया है सो सुनिये वे लिखते हैं।

"खूब अभीतक तो आहार औषधि शास्त्र और अभय चार ही दान सुने जाते थे अब ये गौआदिके नवीन दान और निकल पड़े, क्या लेखकने जैनियोंको पूरा वैष्णव बना लेनेका ही संकल्प कर डाला है?"

ये पंक्तियां झांझरीजीकी हैं। ऊपरकी पंक्तियोंको और इन रतनलालजी झांझरीकी पंक्तियोंको पढ़कर थोड़ा भी समझदार यह समझे विना नहीं रह सकता कि चर्चासागर ग्रन्थके विषयमें झांझरीने बहुत भारी लोगोंको धोखा दिया है।

ऊपर तो खुले शब्दोंमें वैष्णव मतके ब्राह्मणोंको गौदान आदिका खण्डन किया है परन्तु झांझरीजी कहते हैं कि चर्चासागरके लेखक जैनियोंको वैष्णव बनानेका संकल्प ही

कर चुके हैं। क्या यह भारी धोका देना नहीं है, क्या उन पंक्तियोंकी तरफ झांझरीजीकी दृष्टि नहीं गई या जानबूझकर उन्हें छिपाकर समाजको धोखा दिया गया है ? यदि चर्चासागरकी उन पंक्तियोंको नहीं देखा है तो विना पूरा ग्रन्थ देखे सहसा किसी ग्रंथपर अपना कलम कुठार चलाकर उसे अप्रमाण सिद्ध करनेका दुःसाहस करना क्या ठीक है ?

परन्तु हम तो यह समझते हैं उन्होंने इस कुदानके खण्डनको भी देखा है किंतु समाजको धोखेमें डालनेका ही निंद्य कार्य किया है। अस्तु।

गौदानादिक जैन सिद्धान्तमें भी बताये गये हैं। परन्तु उनका अभिप्राय दूसरा है।

चर्चासागरमें लिखा है कि—"परंतु इन्हीं दानोंका वर्णन जैन शास्त्रोंमें भी है, किंतु उनके देनेका अभिप्राय जुदा है, जैनधर्ममें तीन प्रकारके पात्र बताये हैं, उत्तम पात्र मुनि हैं, मध्यम पात्र व्रतप्रतिमाको आदि लेकर ग्यारह प्रतिमा तकको धारण करने वाले श्रावक हैं, तथा जघन्य पात्र ब्राह्मणादि वर्णोंमें उत्पन्न हुए सम्यग्दृष्टि मूल गुणादिकोंके धारण करनेवाले सप्तव्यसनादिक कितनेही पापोंके त्यागी ऐसे व्रती गृहस्थ वा गृहस्थाचार्य हैं, इनमेंसे जघन्य पात्रोंको योग्यायोग्य विचारकर ऊपर लिखे दश प्रकारके दान देने चाहिये तथा मध्यम और उत्तम पात्रोंको आहार औषध आहार (?) (यहांपर शास्त्र शब्दकी जगह आहार लिखा

गया है) और वसतिका इन चार प्रकारके दोनोंमेंसे यथा-योग्य रीतिसे कोई सा भी दान देना चाहिये,,

(चर्चासागर पत्र ३०५)

इन पंक्तियोंसे स्पष्ट सिद्ध है कि चर्चासागरके बनानेवालोंने जैनमतके अनुसार गौदान भूमिदान आदिका प्रयोजन दूसराही बताया है। नाम एकसा आनेसे एक प्रयोजन समझलेना पूरी अनभिज्ञता है।

सुवर्णभूमिदानादिके प्रमाण—

गोदान स्वर्णदान भूमिदान आदि दान शास्त्रकारोंने किस प्रयोजनसे बताये हैं और किस पात्रको देना चाहिये इस विषयमें शास्त्रोंमें बहुत खुलासा रूपसे अनेक प्रमाण भरे हुए हैं, उनमेंसे कुछ प्रमाण हम यहांपर लिखते हैं—

महातपोधनायार्चाप्रतिग्रहपुरस्सरम् ।
प्रदानमशनादीनां पात्रदानं तदिष्यते ॥

(आदिपुराण छपा हुआ पत्र १३४८)

अर्थ—उत्तम तप करनेवाले महातपस्वी मुनियोंके लिये उनका सत्कार पूर्वक-पड़गाहन, पादप्रक्षालन, पूजा आदि कर जो उनके लिये आहार, औषध, पुस्तक, पीछी, कमण्डलु आदि देना है उसे पात्रदान कहते हैं।

यह तो हुआ पात्रदान। अब समदत्ति—समानदत्तिका प्रयोजन सुनिये—

समानायात्मनान्यस्मै क्रियामन्त्रव्रतादिभिः ।
निस्तारकोत्तमायेह भूहेमाद्यतिसर्जनम् ॥

समानदत्तिरेषा स्यात् पात्रेमध्यमतामिते ।
समानप्रतिपत्त्यैव प्रवृत्त्या श्रद्धयान्विता ॥

(आदिपुराण छपा हुआ पत्र १३४८ श्लोक ३८।३९ ।

अर्थ—गर्भाधानादि क्रिया मंत्र और व्रत आदिसे जो अपने समान है तथा संसाररूपी समुद्रसे पार कर देनेवाला है ऐसे अन्य किसी गृहस्थके लिये जो भूमि सुवर्ण आदि देना है उसे समानदत्ति कहते हैं।

अथवा मध्यम पात्र अथवा व्रती सत्पात्र श्रावकके लिये समान बुद्धिसे श्रद्धा पूर्वक दान देनेको भी समानदत्ति कहते हैं।

इन आदि पुराणके संस्कार प्रकरणके श्लोकोंसे यह बात भली भांति सिद्ध होजाती है। सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र द्विज (ब्राह्मण) अथवा मध्यम पात्र द्विजके लिये भूमिदान सुवर्णदान आदि दान दिये जाते हैं।

झांझरीजी कहते हैं कि "अभी तक तो आहार औषध शास्त्र और अभय ये चार ही दान मने जाते थे अब ये गौ आदिके नवीन दान और निकल पड़े" पाठक! अब झांझरीजीसे पूछिये कि चार दानके सिवा भूदान सुवर्णदान आदि दान निकल पड़े हैं या महाशास्त्र—आदि पुराण जैसे अनेक आचार्यप्रणीत शास्त्रोंमें लिखे रक्खे हैं झांझरी जैसे शास्त्रोंको नहीं समझने वालोंके लिये यदि शास्त्रोंकी सभी बातें नइ दीखें तो यह उनकी नासमझीका दोष है या शास्त्रोंका और उनके रचयिताओंका ?

परंतु खेद महाखेद इस बातका है कि शास्त्रोंकी बातोंको नहीं समझनेवाले भी उनके विषयमें चाहे जो बकैं, यह उनका साहस समयकी प्रगतिको सूचित करता है।

कौन ब्राह्मण कहलाता है।

ब्राह्मणोंको गौदान देना चाहिये ऐसा कहकर जो झांझरीजीने लोगोंको भडकाया है यह भी उनका धोखा देना या अपनी मूर्खता जाहर करना है कारण कि शास्त्रोंमें जिन ब्राह्मणोंको कन्या सुवर्ण भूमिदानादिका विधान है वे ब्राह्मण ये नहीं बताये हैं जो आज कल वैष्णव बने हुए प्रसिद्ध हैं किंतु वेही ब्राह्मण लिये गये हैं जो सम्यग्दृष्टि संस्कारधारी सप्तव्यसनादित्यागी अष्ट मूलगुणधारी मध्यम श्रावक या जघन्य श्रावक हैं। जो सधर्मा और सवर्णी हैं उन्हींके लिये इन दोनोंका विधान है।

जैसे इन ब्राह्मणोंको दान करके वैष्णव उसे पात्रदान कहकर धर्म मानते हैं जैनी सिद्धांत उस प्रकारसे नहीं बताता, किंतु वह समानदत्ति है।

अर्थात् इस प्रकारका दान परस्परमें दिया लिया जाता है और विवाहादि कार्योंमें भी दिया जाता है जैसे कि आजकल दहेज देनेकी प्रथा है यह क्या है ? यह वही समानदत्ति है।

क्या जैनी आजकल भूमि सुवर्ण आदि दान नहीं करते हैं ?

विवाहमें कन्यादान के साथ गौ दीजाती है, गौ ही

क्यों ? पलंग बर्तन सोना चांदी आदि सब दिये जाते हैं, यह क्या है ? दान है या कर्जा है ? यदि दान है तो शास्त्री बतावें यह कौनसा दान है ? या जमाईको ये सब चीजें कर्जेके बतौर दी जाती हैं ? कर्जेके बतौर कहना तो सर्वथा अन्याय और अधर्म है । कोई मांगता भी नहीं है और देनेवाला भी कन्यादानके साथ अपने पुत्र सम जामाताको ये सब चीजें दान रूपमें ही देता है । और फिर उन्हें लेनेमें पाप समझता है । इसीका नाम समदत्ति है ।

और भी सुनिये—

प्रायः मृत्यु समयमें अथवा वैसे ही बहुतसे श्रीमान् अपनी बहिनोंको भानजियोंको बहुत सा द्रव्य सोने चांदीके जेवर जमीन आदि देते हैं वह क्या दान नहीं है ? यदि है तो क्या वह समदत्ति नहीं है ? फिर शास्त्र और व्यवहारमें जो मार्ग प्रचलित है उसके विषयमें यों ही ऊधम खड़ा कर देना क्या यह भारी अविवेकता नहीं हैं ?

वास्तवमें जिन्होंने शास्त्र नहीं देखे हैं उन्हें शास्त्रोंके विषयमें समालोचना करने या अपनी राय देनेका बिल्कुल अधिकार नहीं है । अस्तु ।

पाठकोंको यह बात भी समझ लेना चाहिये कि यह भूदान सुवर्णदान आदिका विधान महाराज भरतने गर्भाधानादि संस्कारोंके प्रकरणमें बताया है जो कि विवाहपद्धतिके साथ इसप्रकारकी दानकी पद्धति शास्त्रोक्त एवं अनादि है यह बात सिद्ध हो जाती है ।

भरत महाराजने हाथी घोड़ोंका भी दान दिया था।

जिस समय भगवान् ऋषभदेव वैराग्ययुक्त होकर घरसे विरक्त होकर जंगलको जा रहे थे उससमय भरत महाराजकी प्रशंसामें प्रजाजन यह बात कह रहे थे—

दीयतेऽद्य महादानं भरतेन महात्मना।
विभोराज्ञां समासाद्य जगदाशाप्रपूरणम्।
वितीर्णेनामुना भूयाद्धृतिश्चामकिरेणवः।
दीयंतेऽश्वाश्च सहयोगैरितश्चामीकरेणवः॥

(आदिपुराण छपा हुआ पत्र ६११ श्लोक १५६।१५७)

अर्थ—देखो महात्मा भरत आज भगवानकी आज्ञा लेकर जगत्की समस्त आशाएँ पूर्ण करनेवाला महादान दे रहे हैं भरत जो यह सुवर्णदान देरहे हैं इससे तुम लोगोंको संतोष हो।

देखो ये भरत महाराज इधर पलानसहित घोडोंका दान दे रहे हैं और इधर हाथियोंका दान दे रहे हैं।

हाथी घोडोंका दान भी होता है और ऐसा दान महाराज भरत चक्रवर्तीने किया था, और इसका निरूपण आचार्यवर्य भगवाज्जिनसेन स्वामीने किया है, कहिये झांझरीजी ! अब भी कोई शंका बाकी है क्या ? क्या भरत महाराज और भगवाज्जि-नसेनजी वैष्णव थे ? समाजको ऐसे पचोंसे सावधान होना चाहिये।

और भी प्रमाण—

अणुव्रतधरा धीरा धौरेया गृहमेधिनाम्।
तर्पणीया हि तेऽस्माभिरीप्सितैर्वसुवाहनैः॥

(आदिपुराण १३४४ पत्र श्लोक ८)

जो अणुव्रत धारण करनेवाले हैं और गृहस्थोंमें प्रमुख हैं ऐसे धीर वीर पुरुषको ही इच्छानुसार धन सवारी आदि देकर हम लोगोंको संतुष्ट करना चाहिये।

जिनमंदिरोंके लिये गांव खेत आदिका दान देना भी नित्य-मह या नित्यपूजन कहलाता है ऐसा आदि पुराणमें स्पष्ट लिखा है। यथा—

चैत्यचैत्यालयादीनां भक्त्या निर्मापणं च यत्।
शासनक्रित्य दानं च ग्रामादीनां सदार्चनम् ॥

(आदिपुराण पत्र १३४६ श्लो० २८)

अर्थ—जो भक्तिपूर्वक जिन प्रतिमा अथवा जिनालय बनवाना और सदा पूजा होनेके लिये दानपत्रकर गांव खेत आदिका मंदिरोंमें दान देना भी नित्यमह कहलाता है।

मंदिरोंमें गांव खेत आदिके दान देनेसे उनमें पूजाका प्रबंध सदाके लिये बना रहता है। इसीलिये वह दान नित्य-मह कहलाता है।

जिनमन्दिरोंमें गौदान देनेका प्रमाण।

आचार्य शिवकोटि (भगवती आराधनासारके कर्ता) रत्नमालामें लिखते हैं—

गोभूमिस्वर्णकच्छादिदानं वसतयेऽर्हताम्।
कर्तव्यं जीर्णचैत्यादि समुद्धरणमप्यदः ॥

रत्नमाला (सिद्धांतसारादिसंग्रह छपी हुई पत्र १०४ श्लोक २८)

अर्थ—गौ, भूमि, स्वर्ण, कच्छ—जलप्रदेशी खेत आदि

वस्तुओंका दान जिनमंदिरोंके लिये करना चाहिये । तथा जीर्णचैत्यादिकोंका भले प्रकार उद्धार भी करना चाहिये।

'मुनियोंकी प्रवृत्ति शास्त्रोक्त पद्धतिसे क्या होना चाहिये इस बातको बहुत बिस्तारसे भगवतीआराधनासारमें निरूपण करनेवाले आचार्यवर्य शिवकोटि स्पष्ट रीतिसे जिन-मंदिरोंके लिये गौ भूमि स्वर्ण आदिका दान देनेका विधान करते हैं । अब अधिक प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं है।

शंका होसकती है कि मन्दिरोंमें गौदानका क्या प्रयोजन है तो उसका खुलासा यह है कि मन्दिरोंमें जैसे पूजा करने-वालेके लिये सब सामग्री धोती, दुपट्टा, वर्तन, अष्ट द्रव्य आदि वस्तुएँ उपलब्ध होजाती हैं, उन्हें धर्मात्मालोग अथवा पंचलोग हरएक श्रावकके सुभीतेके लिये मंदिरोंमें पहुंचा देते हैं उसी प्रकार मन्दिरोंमें हरएक श्रावक दूधका अभिषेक कर सके इसके लिये मंदिरमें गौदान भी दिया जाता है।

गौदान करनेसे श्रीजिनेंद्रदेवके अभिषेकके लिये शुद्ध दूध मिल सकता है और उसके मिलनेसे श्रावकगण दुग्धा-भिषेक द्वारा अपने भावोंको भक्तिपूर्वक विशुद्ध एवं विशेष पुण्योत्पादक बना लेते हैं।

यही बात चर्चासागरमें लिखी हुई है देखिये—

"पंचामृतसे भगवान् अर्हन्त देवका नित्य अभिषेक होता रहै, इसके लिये जिनमंदिरमें गौदान करना प्रत्येक गृह-स्थका कर्तव्य है।"

इसके ऊपर लिखा है कि—

"इसके सिवाय भगवान जिनेंद्रदेवका मंदिर बनवाना प्रतिमाजी बनवाकर तथा उनकी प्रतिष्ठा कराकर उस मंदिरमें विराजमान करना. उस प्रतिष्ठाम जो श्रावक–श्राविका संघ आया हो उसको भोजन दान देना, तथा सुवर्णदान देकर सबको तृप्त करना। उस मूर्तिकी पूजा सदा काल होती रहै इसके लिये भूमि क्षेत्र और गांव आदिका दान देना इसके आगे संस्कृतके प्रमाण दिये गये हैं।

(चर्चासागर पत्र ३०६)

ऊपर जो बातें चर्चासागरमें लिखी गई हैं उन्हें हम लोग श्रावक गण सदा करते हैं देखिये—

जिनमंदिर बनवाकर प्रतिमाकी प्रतिष्ठा कराते ही हैं, मेलेमें आये हुए धर्मात्मा भाइयोंका प्रतिष्ठा कारक भोजन सत्कार करना ही है। आवश्यकतानुसार अन्य लोगोंको द्रव्य देकर भी संतुष्ट किया ही जाता है। और मंदिरमें सदैव पूजनादिक होता रहै इसके लिये कहीं पर दूकानें कहीं पर गांव कहीं पर खेत भी मंदिरके अधीन कर ही दिये जाते हैं। और ऐसा ही शास्त्रमार्ग है।

ग्वालियर स्टेटका यह कानून है कि मंदिर बनवानेवाला धनी जब तक मंदिरकी रक्षा, मूर्तिकी पूजा आदिके लिये स्थायी संपत्ति कायदेसे नियत नहीं कर दे, तब तक उस मंदिरमें मूर्ति नहीं बिठाई जाती है। यह नियम देवोत्तर सम्पत्ति एवं धर्मकार्योंकी सतत रक्षाके लिये बहुत उत्तम है।

इसके उदाहरण जैनियोंमें भी श्रवणवेलगोला (जैन-विद्री) चौरासी–मथुरा, महावीरजी, आदि स्थानोंके जिन-मंदिरजी हैं जिनके साथ गांव लगा दिये गये हैं। देहलीके प्रसिद्ध रईस धर्मात्मा स्व० लाला सुगनचंदजीने मंदिर बनवाकर उनकी रक्षा और प्रबंधके लिये अनेक मकान और दूकानें दानमें मंदिरोंके नाम करदी हैं। इस बातकी सिद्धिके लिये अनेक उदाहरण मिलते हैं।

सम्मेद शिखरजीमें जो हाथी है वह भी तो मन्दिरके लिये दानमें ही आया है, उसपर श्रीजीकी सवारी निकलती है. यह तो प्रत्यक्ष बात है। झांझरीजी यदि शिखरजी अभी न गये हों तो जाकर इस हस्तीदानको देख आवें।

जो हस्ती अपने काममें आता था उसपर अब त्रिलोकी-नाथ श्रीजिनेंद्रदेव विराजमान होते हैं, इससे दाताको कितना पुण्य बंध हुआ होगा, कितनी उत्तम भक्तिका उदाहरण है इसे झांझरीजी विचारे सिर्फ चार दानका भी नाममात्र सुननेवाले क्या जानें ?

इसके सिवा प्रतिवर्ष रथोत्सवमें बैल श्रीजीके रथमें जोते जाते हैं यदि कोई जमींदार मंदिरके लिये बैल जोडी दे देवे तो क्या वह प्रशंसनीय दान नहीं होगा यह भी गौ दानही कहलाता है।

ग्राम गोदानादिक लिये और भी प्रमाण–

"तत्र नित्यमहो नित्यं यथाशक्ति जिनगृहेभ्यो

निजगृहाद्गंधपुष्पाक्षतादिनिवेदनं, चैत्य चैत्यालयं कृत्वा ग्रामक्षेत्रादीनां शासनदानं मुनिजनपूजनं च भवति"

(चारित्रसार छपा हुआ प० २१)

अर्थ–नित्य पूजा उसे कहते हैं कि प्रतिदिन अपनी शक्तिके अनुसार जिनमंदिरोंके लिये अपने घरसे गंध पुष्प अक्षतादि लेकर अर्पण करना, तथा चैत्य चैत्यालय बनवा कर उन मंदिरोंके लिये गांव खेत आदि चीजोंका कायदे-के अनुसार दान देना, और उन मंदिरोंमें मुनिजनोंका पूजन करना।

और भी प्रमाण–

"समदत्तिः स्वसमक्रियाय मित्राय निस्तारकोत्तमाय कन्याभूमिसुवर्णहस्त्यश्वरथरत्नादिदानं स्वसमानाभावे मध्यमपात्रस्यापि दानम्।

(चारित्रसार पत्र २१)

अर्थ–अपने समान क्रियावाले सम्यग्दृष्टि द्विजके लिये (अथवा गृहस्थाचार्य के लिये) कन्या, भूमि, सुवर्ण, हस्ति अश्व, रथ, रत्नादिक वस्तुओंका दान करना समानदत्ति कहलाती। यदि स्वसमान पात्र न मिलने पर मध्यम पात्रको भी इन चीजोंका दान करना चाहिये।

यही बात धर्मसंग्रह श्रावकाचारमें लिखी है–

कुलजातिक्रियामन्त्रैः स्वसमाय सधर्मिणे।
भूकन्याहेमरत्नाश्वरथहस्त्यादि निर्वपेत्।

(धर्मसंग्रह श्रावकाचार छपा हुआ पत्र २५२)

अर्थ–जो कुल जाति क्रिया और मन्त्रोंके द्वारा अपने समान है अर्थात् जो सजातीय सधर्मा है ऐसे श्रावक वरके लिये कन्या, भूमि, सुवर्ण, रत्न, अश्व, रथ, हस्ती आदि वस्तुओंका दान देवे।

जिनमंदिरके लिये ग्रामादिकका अर्पण करना चाहिये।

स्थापनं जिनबिम्बानां तद्गृहस्य विधायनम्।
तस्मै ग्रामगृहादीनां शासनस्य यदर्पणम्।

(धर्मसंग्रह श्रावकाचार पत्र २१२)

अर्थ–जिनबिम्बोंका स्थापन करना,जिनमंदिरका बनवाना उसके लिये—जिन मंदिरके लिये ग्राम गृहादिकका अर्पण करना।

इन सब प्रमाणोंसे गोदान, भूमिदान, सुवर्णदान आदि दानोंका विधान शास्त्रोंसे भलीभांति सिद्ध होता है।

चर्चा नं १८९

प्रायश्चित्त प्रकरण।

इस प्रायश्चित्तके सम्बंधमें सबसे पहली बात तो पाठकोंको यह ध्यानमें रखना चाहिये कि इन प्रायश्चित्त ग्रंथोंके पढ़ने पढ़ानेका गृहस्थोंको न तो अधिकार है और न उन प्रायश्चित्तोंकी न्यूनाधिकताके सम्बंधमें समालोचना करनेका ही उन्हें अधिकार है।

क्योंकि प्रायश्चित्त देनेका अधिकार आचार्योंको है। जिस प्रकरणपर झांझरीजीने अपनी समालोचना की है वह

प्रकरण तो खास मुनियोंका है इसलिये वह सम्बंध मुनि एवं आचार्यौंका ही है, उस विषयमें गृहस्थोंका कुछ भी विचार करना सर्वथा अनुचित एवं अनधिकार है।

प्रायश्चित्त आज्ञाशास्त्र है।

दूसरी बात यह है कि प्रायश्चित्त गुरुद्वारा नियत की गई आज्ञा है। आज्ञा जिस पात्रके लिये जिस दोष और जिस भावकी कक्षाको ध्यानमें रखकर जो कुछ भी गुरुद्वारा दी जाय उसकी हीनाधिकताका विचार हम लोग गृहस्थ कर ही क्या सक्ते हैं ?

अनेक हमारे भाई यह भी शंका करते हैं कि जब प्रायश्चित्त ग्रंथोंको पढ़ने पढ़ानेका हमें अधिकार नहीं है तो फिर जिस ग्रंथमें ऐसा विषय है उसे छपाया क्यों गया ?

इस शंकाके उत्तरमें एक बात तो यह है कि चर्चासागर ग्रंथमें प्रायश्चित प्रकरण तो एक दो चर्चाओंमेंही लिखा गया है परंतु उसमें सेकडों ऐसी चर्चायें हैं जिन्हें पढ़कर अनेक शास्त्रोंके रहस्योंका बोध प्रमाण सहित हो जाता है ऐसे लाभकारी ग्रंथका प्रकाशित होना उपयोगी ही है।

दूसरी बात यह है कि जो बातें लिखित शास्त्रोंमें हैं वेही छपे हुए शास्त्रों में हैं।

छपनेमात्रसे हरएक अनपढ़ आदमी भी उन शास्त्रोंकी अंटसंट समालोचना करनेका अधिकारी होजाता है और लिखित का न हो ऐसी तो कुछ बात नहीं है।

फिर जितने ग्रंथ छपे हैं वे सब सबों के लिये ही तो उपयोगी नहीं हैं, संस्कृत शास्त्र अनेक प्रकारके छप गये हैं परंतु उन सबोंको पढ़नेके लिये हर एक तो पात्र नहीं है। छहढाला बांचने की योग्यता रखने वाले क्या श्लोकवार्तिक या यशस्तिलकचंपू पढ़नेके पात्र हैं या उन्हें अक्षर मिला मिलाकर बांच भी लेवें तो क्या उनका रहस्य विना उन ग्रंथोंको गुरुमुखसे पढ़े कभी समझ सक्ते हैं ? कभी नहीं। इसालिय सब ग्रंथ सबों के उपयोगके लिये नहा होते हैं।

तीसरी बात यह है कि यदि प्रायश्चित्त आदि प्रकरण आजानेसे चर्चासागर का छपना ठीक नहीं समझा जाय तो फिर कहना होगा कि चर्चासागर तो अब छपा है उससे बहुत पहले वे सब ग्रंथ छप चुके हैं जिसमें गौदान भूमिदान, गोमयआरती, आदि बातें सिद्ध की गई हैं उन सब ग्रंथोंके प्रमाण और उल्लेख हमने ऊपर किये भी हैं।

खासकर प्रायश्चित्तका विषय ऐसा है जो हरएक पुरुषके पढ़ने योग्य नहीं है उस प्रायश्चित्त विषयके ही कई ग्रंथ बहुत पहलेसे छाप कर प्रसिद्ध किये जा चुके हैं।

इस सम्बंधके ग्रंथ माणिकचंद ग्रंथमालासे बाबू नथूराम जी प्रेमी द्वारा भी छपाये जाचुके हैं इसलिये ग्रंथके छपने न छपनेकी बात कुछ सार नहीं रखती है। अस्तु।

अब हम संक्षेपमें यह बतला देना चाहते हैं कि जो प्रायश्चित्त मुनियोंके लिये जिन दोषोंके सम्बन्धमें चर्चासागर

ग्रन्थमें बताये गये हैं वे ही प्रायश्चित्त और दोष अन्य अनेक ग्रन्थोंमें भी पाये जाते हैं। देखिये–

आचार्य शिरोमणि वीरनंदी महाराज आचारसार ग्रंथमें लिखते हैं–

प्रमादेनान्यपाखण्डिगृहस्थयतिसंश्रितम्।
वस्तुस्तेन यतः किञ्चिच्चेतना चेतनात्मकम्॥
यतीन् प्रहरतोऽन्यस्त्रीहरणादींश्च कुर्वतः।
दशनवपूर्वज्ञस्य ऽयाद्यसंहननस्य तत्॥

(आचारसार छपा हुआ पत्र ४७)

अर्थात् प्रमादसे–कषायावेशसे यदि कोई मुनि किसी पाखंडीकी, या गृहस्थकी या यतिकी चेतन या अचेतन वस्तु चुरा ले जाय। या कोई मुनि, मुनियोंको मारै या अन्य स्त्रीका हरण करै ऐसा अपराध करनेवाला यदि दश अंग नव पूर्वका भी पाठी मुनि हो और जिसके आदिके तीन संहनन भी हों तो उसे भी वही प्रायश्चित्त देना चाहिये, जो ऊपर कहा गया है।

ऊपर ऐसे मुनियोंके लिये दीक्षा छेद प्रायश्चित्त कहा गया है। देखिये–

पुनर्दीक्षाग्रहो मूलं सर्वां पूर्वां तपःस्थितिम्।
छित्वोन्मार्गस्थपार्श्वस्थप्रभृतिश्रमणेष्विदम्॥

(आचारसार पत्र ४६ श्लोक ४८)

अर्थात्–जो उन्मार्ग गामी पार्श्वस्थ आदि मुनि हैं उनके विषयमें इस प्रकारका प्रायश्चित्त है कि पहले किये हुए समस्त तपका छेद करके फिरसे नवीन दीक्षा दीजाय।

फिर जितने ग्रंथ छपे हैं वे सब सबों के लिये ही तो उपयोगी नहीं हैं, संस्कृत शास्त्र अनेक प्रकारके छप गये हैं परंतु उन सबोंको पढ़नेके लिये हर एक तो पात्र नहीं है। छहढाला बांचने की योग्यता रखने वाले क्या श्लोकवार्तिक या यशस्तिलकचंपू पढ़नेके पात्र हैं या उन्हें अक्षर मिला मिलाकर बांच भी लेवें तो क्या उनका रहस्य विना उन ग्रंथोंको गुरुमुखसे पढ़े कभी समझ सक्ते हैं ? कभी नहीं। इसलिये सब ग्रंथ सबों के उपयोगके लिये नहीं होते हैं।

तीसरी बात यह है कि यदि प्रायश्चित्त आदि प्रकरण आजानेसे चर्चासागर का छपना ठीक नहीं समझा जाय तो फिर कहना होगा कि चर्चासागर तो अब छपा है उससे बहुत पहले वे सब ग्रंथ छप चुके हैं जिसमें गौदान भूमिदान, गोमयआरती आदि बातें सिद्ध की गई हैं उन सब ग्रंथोंके प्रमाण और उल्लेख हमने ऊपर किये भी हैं।

खासकर प्रायश्चित्तका विषय ऐसा है जो हरएक पुरुषके पढ़ने योग्य नहीं है उस प्रायश्चित्त विषयके ही कई ग्रंथ बहुत पहलेसे छाप कर प्रसिद्ध किये जा चुके हैं।

इस सम्बंधके ग्रंथ माणिकचंद ग्रंथमालासे बाबू नथूराम जी प्रेमी द्वारा भी छपाये जाचुके हैं इसलिये ग्रंथके छपने न छपनेकी बात कुछ सार नहीं रखती है। अस्तु।

अब हम संक्षेपमें यह बतला देना चाहते हैं कि जो प्रायश्चित्त मुनियोंके लिये जिन दोषोंके सम्बन्धमें चर्चासागर

ग्रन्थमें बताये गये हैं वे ही प्रायश्चित्त और दोष अन्य अनेक ग्रन्थोंमें भी पाये जाते हैं। देखिये—

आचार्य शिरोमणि वीरनंदी महाराज आचारसार ग्रंथमें लिखते हैं—

प्रमादेनान्यपाखण्डिगृहस्थयतिसंश्रितम्।
वस्तुस्तेन यतः किञ्चिच्चेतनाचेतनात्मकम्॥
यतीन् प्रहरतोऽन्यस्त्रीहरणादींश्च कुर्वतः।
दशनवपूर्वज्ञस्य त्र्याद्यसंहननस्य तत्॥

(आचारसार छपा हुआ पत्र ४७)

अर्थात् प्रमादसे—कषायावेशसे यदि कोई मुनि किसी पाखंडीकी, या गृहस्थकी या यतिकी चेतन या अचेतन वस्तु चुरा ले जाय। या कोई मुनि, मुनियोंको मारै या अन्य स्त्री-का हरण करै ऐसा अपराध करनेवाला यदि दश अंग नव पूर्वका भी पाठी मुनि हो और जिसके आदिके तीन संहनन भी हों तो उसे भी वही प्रायश्चित्त देना चाहिये, जो ऊपर कहा गया है।

ऊपर ऐसे मुनियोंके लिये दीक्षा छेद प्रायश्चित्त कहा गया है। देखिये—

पुनर्दीक्षाग्रहो मूलं सर्वां पूर्वां तपःस्थितिम्।
छित्वोन्मार्गस्थपार्श्वस्थप्रभृतिश्रमणेष्विदम्॥

(आचारसार पत्र ४६ श्लोक ४८)

अर्थात्—जो उन्मार्ग गामी पार्श्वस्थ आदि मुनि हैं उनके विषयमें इस प्रकारका प्रायश्चित्त है कि पहले किये हुए समस्त तपका छेद करके फिरसे नवीन दीक्षा दीजाय।

शास्त्रकारोंने उन्मार्गगामी मुनियोंके पांच भेद बताये हैं पाश्र्वस्थ, कुशीलक, संसक्त, अवसन्न और मृगचारी।

इन पांच भेद वाले मुनियोंसे अनेक दोष होते हैं ये कषायोद्रेकसे बड़ेसे बड़ा अनर्थ भी कर बैठते हैं। दृष्टान्तके लिये द्वीपायन मुनिको ही ले लीजिये उनके क्रोधसे द्वारिका ही भस्म हो गई। क्या यह कम अपराध है। इसी प्रकार माघनंदि मुनिराजकी कषायने उन्हें कुम्हारी संसर्ग जसे महानिंद्य मुनिके सर्वथा अयोग्य कुकृत्यमें प्रवृत्त करा दिया।

परंतु शास्त्रकारोंने कहीं भी ऐसे कार्य करने वालोंको अच्छा या उनके कृत्यको मुनियोग्य कृत्य नहीं बताया है। फिर भी ऐसे मुनियोंकी भी शुद्धि बताई है। ऐसे मुनि भी अपने उस भारी अपराधकी निवृत्तिके लिये आचार्य शरणमें जाते हैं और अपने द्वारा हुए कुकृत्यका उल्लेख कर उसका प्रायश्चित्त लेते हैं। परंतु आचार्य भी ऐसे भारी अपराधोंका प्रायश्चित स्वयं नहीं देते हैं उस दोषी मुनिको दूसरे आचार्यके पास भेजते हैं, दूसरे तीसरे आचार्यके पास भेजते हैं, व चौथेके पास इस रूपसे सात आचार्यों तक वह दोषी मुनि पंहुचता है और वहां उस बैठे हुए संघके बीचमें अपना अपराध खुले रूपसे निवेदन करता है और उसका प्रायश्चित्त मागता है। परंतु वे सातवें छठे आदि आचार्य उसे फिर लौटाकर भेजते जाते हैं स्वयं दंड नहीं देते, अंतमें वह उन्हीं प्रथम अपने गुरुके चरणमें पुनः उत्तरोत्तर आचार्यों द्वारा

भेजा हुआ पहुंचता है। और वे उसे उस समय उसके भावोंकी सरागता या वीतरागताकी तरतमता (न्यूनाधिकता) पहचान कर यथायोग्य दंड देकर पुनः उसे संघमें ले लेते हैं यह कथन आचारसारमें इस प्रकार है—

प्रायश्चित्तं तदेवात्र किन्तु स्वगणसूरिणा।
आलोच्य प्रेषितः सप्तसूरिपार्श्वमनुक्रमात् ॥
आलोच्य तैस्तैरप्राप्तप्रायश्चित्तोऽन्त्यसूरिणा।
तमाद्यं प्रापितस्तेन दत्तं चरति पूर्ववत् ॥

(आचारसार पत्र ४७ श्लो० ६०।६१)

अर्थात् प्रायश्चित्त तो वही दिया जाता है, परंतु अपने गणके आचार्यद्वारा दोषोंका निरूपण होकर क्रमसे सात गणोंके अधिपति सात आचार्योंके पास वह दोषी मुनि भेज दिया जाता है, परन्तु वे सब आचार्य भी उसके दोषोंकी आलोचना तो करते हैं किन्तु प्रायश्चित्त उसे नहीं देते हैं इसलिये वह अन्तमें उनके द्वारा दिये गये प्रायश्चित्तको लेकर पुनः स्वात्मसिद्धिमें लग जाता है।

यहांपर एक बात ध्यान देनेकी यह भी है कि बड़े भारी अपराधका कुछ उपवासोंका विधान बताकर थोड़ा ही प्रायश्चित्त क्यों कहा गया है? इसका समाधान इसप्रकार समझ लेना चाहिये कि सबसे बड़ा प्रायश्चित्त तो उसकी दीक्षाका छेद और संघ-बहिष्कार है और पीछे क्रमसे सात आचार्योंके पास भेजना और वहां उसके दोषोंकी आलोचना होना यह क्या कम दण्ड है? अनेक मुनियोंके बीचमें उसके कुकृत्यकी

आलोचना होना ही पूरा प्रायश्चित्त है। पीछे उसकी सरलता एवं मनकी पवित्रताका विचार कर शुद्धिके लिये यथायोग्य पात्रानुसार उपवासोंका विधान बताते हैं। चर्चासागरमें पूरा प्रकरण नहीं है, इसीलिये झांझरीजी जैसे पुरुष उस ग्रन्थकी खिल्ली उड़ाकर भले ही शेखचिल्ली जैसी बातें कहें परन्तु जो बात चर्चासागरमें कही गई है वह सप्रमाण है और शास्त्रोक्त है।

प्रायश्चित्त भिन्न २ पुरुषोंको भिन्न २ प्रकारका दिया जाता है। किसी व्यक्तिको अधिक दोषपर भी थोड़ा प्रायश्चित्त किसीको कम दोषपर भी अधिक प्रायश्चित्त दिया जाता है, कहींपर न्यूनाधिक दोष करनेवालोंको भी समान प्रायश्चित्त दिया जाता है। इन बातोंका विचार आचार्य महाराज ही कर सक्ते हैं। कौन मुनि कुटिल परिणामी है कौन सरल परिणामी है किसके हृदयसे शल्य निकल चुकी है किसकेसे नहीं निकली है ये सब बातें उस पदसे अत्यन्त नीचले दर्जेमें रहनेवाले अनाधिकारी गृहस्थ क्या जान सक्ते हैं और क्या सम्मति दे सक्ते हैं ?

यह सच्ची घटना है कि एक बहुत बड़े श्रीमान्‌से कोई दोष हो गया था परन्तु पीछे उसे अपने दोषपर बहुत पश्चात्ताप हुआ। और मंदिरके दरवाजेपर जहां पञ्चोंके जूते रक्खे जाते थे वहां आकर वह श्रीमान् खड़ा हो गया जब भीतर पञ्चोंको मालूम हुआ तो मंदिरमें उसे बुलाया और उसके दोषके प्रायश्चित्तरूप पांच लवंग श्री जीके समक्ष चढ़ानेकी

उसे आज्ञा दी। इस थोड़ेसे दण्ड विधानसे और भी उसे लज्जित होना पड़ा। इसलिये मुनियोंके प्रायश्चित्तका विचार गृहस्थ नहीं कर सक्ते हैं। अस्तु,

जिन पार्श्वस्थादि मुनियोंका कथन आचार्य वीरनंदी विरचित आचारसारमें है वही कथन षट्प्राभृतमें भी है देखिये—

पासत्थभावठाओ अणाइकालं अणेय वाराओ।
भाऊण दुहं पत्तो कुभावणा भाव वीहेहिं॥

आचार्य कुन्दकुंद विरचित षट्प्राभृत पत्र १३७।

इस गाथाकी संस्कृत टीका आचार्य श्रुतसागरविरचित इस प्रकार है—

" पासत्थ भावणाओ–पार्श्वस्थभावनाः कास्ताः पार्श्वस्थपंचभावनाः यो वसतिषु प्रतिबद्धः उपकरणोपजीवी. श्रवणानां पार्श्वे तिष्ठति,स पार्श्वस्थः,क्रोधादिकषायकलुषितात्मा व्रतगुणशीलैः परिहीनः संघस्याविनयकारी कुशील उच्यते। वैद्यकमंत्रज्योतिषोपजीवी राजादिसेवकः संसक्तः कथ्यते जिनवचनानभिज्ञो मुक्तचारित्रभारो ज्ञानचरणभ्रष्टः करणालसोवसन्नः आभाष्यते त्यक्तगुरुकुल एकाकित्वेन स्वच्छंदविहारी जिनवचनदूषको मृगचारित्रः परिलप्यते स्वच्छंद इति वा एते पंचश्रवणा जिनधर्मबाह्या न वंदनीया इति।

(षट् प्राभृत पत्र १३८)

इसका तात्पर्य यह है कि जो उपकरणोंसे आजीविका चलावे, मुनियोंके पासमें रहे वह पार्श्वस्थमुनि है। जो क्रोधादि कषायोंसे कलुषित हो, व्रत गुणशीलोंसे रहित हो, संघका अविनय करै वह कुशील मुनि है। जो वैद्यक मंत्र ज्योतिषसे आजीविका करै राजादिककी सेवा करै वह संसक्तमुनि है। जो जिनवचनका अजानकार हो, चारित्रभारको छोड़ चुका हो, ज्ञानचारित्रसे भ्रष्ट हो वह अवसन्न मुनि है। जो गुरुकुलको छोड़कर एकाकी विचरै, जिनवचनमें दूषण लगावै, वह स्वच्छंदविहारी मृगचारित्र वा स्वच्छंदमुनि है। ये पांचों प्रकारके मुनि जिन धर्मसे बाह्य हैं और वंदनाके पात्र नहीं हैं।

यही कथन आचार्य वट्टकेरविरचित मूलाचार ग्रंथमें है—

गुरु परिवादो सुदवुच्छेदो तित्थस्स मइलणा जड्डदा मिंभल कुसील पासत्थदा य उस्सार कप्पह्मि।

(मूलाचार छपा हुआ पत्र १३१)

आचार्यवर्य वसुनंदि सिद्धांतचक्रवर्ती विरचित इसकी संस्कृत टीकामें इन पार्श्वस्थादि मुनियोंकी व्याख्या है, ऊपर हम उनका स्वरूप कह चुके हैं इसलिये अब इस गाथाका अर्थ नहीं लिखते हैं।

इसी प्रकार भगवती आराधनामें आचार्य शिवकोटीने इन पार्श्वस्थादि मुनियोंका स्वरूप लिखा है, सो वहांसे पाठक देख लेवें।

ऐसे मुनियोंका भी सुधार होता है—

जो ऐसे पार्श्वस्थादि वृत्ति रखनेवाले मुनि होते हैं उन्हींसे यतिओंको मारना, चारित्रभ्रष्ट होना, आर्जिकासे भ्रष्ट होना आदि मुनिपदको सर्वथा नष्ट करनेवाले भारी अपराध होजाते हैं, परंतु फिर भी उनके परिणाम विरक्त होजानेपर कालान्तरमें वे आत्मसुधारकी भावना रखकर जब आचार्यके निकट जाते हैं तब जीवमात्रका कल्याण करनेवाले आचार्य भी उन भ्रष्ट मुनियोंके भावोंकी पूर्ण परीक्षा करके बहुत काल पीछे यथायोग्य प्रायश्चित्त देते हैं।

जिन ग्रंथोंमें यह सब प्रायश्चित्तोंका वर्णन है वे सब ग्रंथ छप चुके हैं परंतु उनके छपनेसे कुछ हानि नहीं है किसी भी ग्रंथमें ऐसे नीच कार्योंका समर्थन नहीं है, किंतु निंदा और प्रायश्चित्त ही बताया गया है।

चर्चासागरमें भी ऐसे भ्रष्ट मुनियोंके लिये प्रायश्चित्त ही तो बताया है उसमें उन भ्रष्ट मुनियोंके कुकृत्यकी थोड़ी भी प्रशंसा या समर्थन किया गया हो तो झांझरीजी या उनको आगे रखनेवाले पंडित या बाबू कोई भी बतावें? वास्तवमें देखा जाय तो चर्चासागर ग्रंथका बहिष्कार करनेकी खोटी नीयतसे ये लोग उस ग्रन्थका अभिप्राय बदलकर पर्चोंद्वारा लोगोंको अन्यथा समझाते हैं और स्वयं मुनिमार्ग और शास्त्रोंका झूंठा अपवादकर जैनधर्मको लांच्छित ठहरानेका खोटा प्रयास करते हैं। यह बड़े खेदकी बात है।

और भी प्रमाण–

" ऐते पंच श्रमणाः जिनधर्मबाह्याः एवं उक्तपार्श्वस्थादिपंचविधोन्मार्गस्थितस्याऽपरिमितापराधस्य सर्वपर्यायमपहाय पुनर्दीक्षादानं मूलमित्युच्यते"

"प्रमादादन्यमुनिसंबाधिनमृषिं छात्रं गृहस्थं वा परपाखण्डि प्रतिबद्धचेतना चतनद्रव्यं वा परस्त्रियं वा स्तेनयतो मुनीन् प्रहरतः वान्यदप्येवमादिविरुद्धाचारितमाचरतो नवदशपूर्वधरस्यादित्रिकसंहननस्य जितपरीषहस्य दृढधर्मिणः धीरस्य भयभीतस्य निजगुणानुपास्थापनं प्रायाश्चित्तं भवति"

तन ऋष्याश्रमात् द्वात्रिंशद्दण्डांतरं विहितविहारेण बालमुनीनपि वंदमानेन प्रतिवंदनाविरहितेन गुरुणा सहालोचयता शेषजनेषु, कृतमौनव्रतेन विंधृतपराङ्मुखपिच्छेन जघन्यतः पंचपंचोपवासाः उत्कृष्टतः षण्मासोपवासाः कर्तव्याः उभयमप्याद्वादशवर्षादिति"

(चारित्रसार पत्र ६३ । ६४ ।

अर्थात् पार्श्वस्थादि पांच प्रकारके मुनियोंको फिरसे दीक्षा देना प्रायश्चित्त बताया है तथा स्त्री आदिको चुरानेवाले मुनि आदिको मारनेवाले, अथवा और प्रकार भी विरुद्धाचरण करने वाले मुनिको निज 'गुणानुपस्थापन' नामका प्रायश्चित्त बताया है ऐसा अपराधी मुनि ऋषियोंके आश्रमसे बत्तीस दंड अलग रहता है, सबोंको नमस्कार करता है उसे कोई नमस्कार नहीं करता, किसीसे बोलता नहीं, केवल गुरुसे आलोचना करता

है। पीछी उलटी रखता है, ऐसे संघबाह्य मुनिको कमसे कम पांच २ उपवास ज्यादासे ज्यादा छह महीनेका उपवास बारह बरसतक करना चाहिये।

झांझरीजीने जो यह लिखा है कि शूद्र और ब्राह्मणकी हत्याके प्रायश्चित्तमें आठगुणा अंतर क्यों ? इसके उत्तरमें उन्हें नीचे लिखा आदिपुराणका प्रमाण देखना चाहिये—

स्यादवध्याधिकारेपि स्थिरात्मा द्विजसत्तमः।
ब्राह्मणो हि गुणोत्कर्षात् नान्यतो वधमर्हति॥
सर्वः प्राणी न हन्तव्यो ब्राह्मणस्तु विशेषतः।
गुणोत्कर्षापकर्षाभ्यां वधोऽपि द्व्यात्मता मता॥

(आदिपुराण पत्र १४५७ श्लो० १९४।१९५)।

अर्थ—आगे अवध्याधिकार कहते हैं, जिसका अन्तःकरण स्थिर है, और जो ब्राह्मण है, ऐसा उत्तम द्विज सबसे अधिक गुणी होनेसे दूसरेके द्वारा वध करनेके योग्य नहीं होता है।

सब प्राणियोंको नहीं मारना चाहिये और विशेष कर ब्राह्मणोंको कभी नहीं मारना चाहिये इस प्रकार गुणोंकी अधिकता और हीनता होनेसे वध भी दो प्रकारका माना है,

इससे यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है कि सबकी अपेक्षा ब्राह्मण अधिक रक्षाका पात्र है, उसका वध गुणोत्कर्षकी अपेक्षा शूद्रोंसे अनेक गुणा पापका कारण होता है। जैसे एकेंद्रियादि वधसे द्वींद्रियादि पंचेंद्रियपर्यंत उत्तरोत्तर पापाधिक्य है उसी प्रकार ब्राह्मणके वधका बहुत बड़ा पाप है इसलिये उसका प्रायश्चित्त भी बहुत ज्यादा होता है।

अपने यहां ब्राह्मणका लक्षण सम्यग्दृष्टि व्रती श्रावक माना गया है,

प्रायश्चितके लिये अन्य ग्रन्थोंके प्रमाण।

जो चर्चासागरमें मुनियोंके लिये प्रायश्चित बताये गये हैं वे अन्य प्रायश्चित्त ग्रन्थोंमें भी ज्योंके त्यों पाये जाते हैं। चर्चासागर बनानेवालोंने उन्हीं आचार्य ग्रंथोंसे लेकर प्रमाण रख दिये हैं देखिये—

चर्चासागरमें जो यति मारनेका और श्रावक मारने आदिका प्रायश्चित्त क्रमसे एक वर्ष पर्यन्त निरंतर तेला पारणा तथा छह महिने पर्यंत निरन्तर तेला पारणा आदि लिखा है वही प्रायश्चित्त आचार्य गुरुदासने प्रायश्चित्त चूलिकामें लिखा है—

साधूपासकबालस्त्रीधेनूनां घातने क्रमात्।
यावाद्द्वादश मासाः स्यात् षष्ठमर्धार्धहानियुक् ॥

(प्रायश्चित्त संग्रह छपा हुआ पत्र १०९ श्लोक ११।

इसका यह अर्थ है कि रत्नत्रयधारी साधु, श्रावक, बालक, स्त्री और गौ इनके घात करनेपर क्रमसे एक वर्ष पर्यन्त निरंतर तेला पारणा, छह महीने पर्यंत निरंतर तेला पारणा, तीन महीनेतक तेला पारणा, डेढ महीनेतक तेला पारणा और तेवीस दिनतक तेला पारणा रूप प्रायश्चित्त है।

प्रायश्चित्तके लिये अन्य भी प्रमाण।

इसी दोषका यही प्रायश्चित्त आचार्य इन्द्रनंदि योगीन्द्रने भी कहा है—

विरदो व सावओ वा तिवि हो जदि संजदस्सउवरिंदु
उवरयणादिनिमितं अप्पाणं घादए कोवि।
ताण वधे संजादे बारसमासा तहेव छम्मासा
तिण्डिय मासा छट्ठे दिवट्ठ मासोय दायव्वं

(आचार्य इंद्रनंदिविरचित प्रायश्चित्त संग्रहका छेद
पिण्डाधिकार छपा हुआ पत्र ६ गाथा २६। २७।

इन गाथाओंका अर्थ भी वही है जो ऊपर किया जाचुका है।

इसी प्रकार आर्जिकाके साथ मुनिके भ्रष्ट होनेके सम्बन्धमें जो प्रायश्चित्त चर्चासागरमें लिखा है वही प्रायश्चित्त अन्य शास्त्रोंमें भी आचार्योंने बताया है। देखिये—

जो अव्वंभं सेवदि विरदो सत्तो सइं अविण्णादं।
सपडिक्कमणं कल्लाणपंचमं तस्स दातव्वं॥

(आचार्य इन्द्रनंदी योगीद्रविरचित प्रायश्चित्त--
छेद पिण्डाधिकार पत्र ११)

अर्थ—जो मुनि एकबार चुपचाप मैथुन सेवन करता है उसका प्रतिक्रमण सहित पंच कल्याणक प्रायश्चित्त है।

इसी प्रकार भोजन बनाकर खाने आदिके प्रायश्चित्तोंका विधान भी सर्वत्र मिलता है जैसे—

रात्रौ स्नानेन मुक्त स्यादेकास्मिंश्च चतुर्विधे।
उपवासः प्रदातव्यः षष्ठमेव यथाक्रमम्॥

(आचार्य गुरुदासविरचित प्रायश्चित्त समुच्चय
छपा हुआ पत्र १६३ श्लोक २३)

अर्थ—व्याधि विशेष, परिश्रम नाना प्रकारके महोपवास

आदिसे पीडित हुआ साधु कर्मोदयवश प्राण बचना कठिन मालूम होने पर रात्रिमें कोई सा एक आहार और चारों प्रकारके आहार ग्रहण करै तो क्रमसे उपवास और षष्ठ प्रायश्चित्त है।

ऊपर जो अर्थ किया गया है वह संस्कृत टीकाके आधारपर किया गया है संस्कृत टीका इस प्रकार है—

"रात्रौ निशि ग्लानेन व्याधिविशेषपरिश्रमविविधोपवासादिपरिपीडितेन सता कर्मोदयवशात् प्राण संकटे, भुक्ते अभ्यवहृते सति स्यात्-भवेत् आदि"

(प्रायश्चित्त चूलिका पत्र ११८ छपाहुआ)

अर्थ ऊपर किया जा चुका है।

चर्चासागर ग्रंथमें कोई एक भी ऐसा प्रायश्चित्त विधान नहीं हैं जो अन्य समस्त प्रायश्चित्तोंमें नहीं पाया जाय। एक एक पंक्ति मिलाकर देख ली गइ है।

अकलंक प्रायश्चित्त आचार्यइन्द्रनंदी प्रायश्चित्त, आचार्यगुरुदासविरचित प्रायश्चित्तचूलिका आदि सब ग्रंथ माणिकचन्द्रग्रंथमालामें नाथूरामजी प्रेमी द्वारा चर्चासागरसे बहुत पहले छपाये जा चुके हैं। इसलिये अब अधिक लिखना व्यर्थ है। चर्चासागरमें जो कुछ भी मुनियोंके प्रायचत्त संवधमें प्रमाण दिये गये हैं वे सब अन्य प्रायश्चित्त शास्त्रोंमे भी आचार्यों द्वारा लिखे गये मिलते हैं।

जो लोग चर्चासागरका बहिष्कार करने पर उतारू हो

गये हैं वे इन उपर्युक्त आचार्यकृत अनेक शास्त्रीय ग्रंथोंके लिये क्या कहते हैं सो पहले बतावें ?

पाठक यह भी देख लें कि ये सब प्रायश्चित्त विधान पंचम कालके मुनियोंके लिये हों ऐसा भी नहीं हैं किंतु चतुर्थ कालके मुनियोंके लिये भी हैं । क्योंकि पार्श्वस्थादि मुनियोंके भेद आदि सामान्य विवेचनसे यह बात भली भांति सिद्ध हो जाती है ।

मुनियोंकी भ्रष्टताकी चर्चासागरमें निन्दाही कीगई है।

चर्चासागर ग्रंथमें मुनियोंकी भ्रष्टताके प्रायश्चित्त तो शास्त्रोंके प्रमाणोंसे दिखाये गये हैं परंतु ग्रंथकार पं० चम्पा-लालजीने उन दोषोंका समर्थन नहीं किया है किंतु निंदा ही की है जैसे कि–

"यदि किसी मुनिसे क्रोधादिक कषायोंके वश होकर अपनी सामर्थ्यसे तथा अशुभ कर्मके उदयसे अनेक अन-र्थोंका मूल ऐसा महापातक हो जाय अर्थात् यद्यपि महा-मुनि समस्त जीवोंकी रक्षा करनेवाले हैं सब प्रकारकी हिंसाका त्यागकर अहिंसा महाव्रतको धारण करनेवाले हैं तथापि यदि दैवयोगसे दुष्टबुद्धिसे उनसे कोई अनुचित बन जाय तो वे मुनि भारी दंड देनेके योग्य हैं"

(चर्चासागर पत्र ३१७)

इस चर्चासागरके कथनसे पाठक सोच सकते हैं कि उसमें भ्रष्ट मुनियोंकी निंदाकी गई है या उनका समर्थन ? ग्रंथकारने ऐसे भ्रष्ट मुनियोंको महापातकी अनेक अनर्थोंकी

जड़ अनुचित कार्य करनेवाले और भारी दंडके पात्र बताया है । परंतु प्रायश्चित्तोंका विधान वही लिखा है जो शास्त्रोंमें लिखा हुआ है। अपनी निजी सम्मतिसे उन्होंने एक अक्षर भी नहीं लिखा है ।

उन्होंने तो शास्त्रोंके प्रमाणोंके संग्रह करनेके सिवा कुछ नहीं किया है ।

चर्चा नं० १९१, १९२

इन दोनों चर्चाओंमें कोई खास बात नहीं है किन्तु जो व्यवहार देखा जाता है वही इन चर्चाओंमें लिखा हुआ है चर्चासागरमें जो प्रमाण दिया गया है कि–

तया सह तद्बालस्तु द्व्यष्ट स्नानेन शुद्ध्यति ।

इसका अर्थ चर्चासागरमें जो यह किया गया है कि यदि कोई बालक मोहसे रजस्वला स्त्रीके पास सोवे बैठे वा रहे तो सोलह वार स्नान करनेसे उसकी शुद्धि होती है ।

यह अर्थ वास्तवमें ठीक नहीं है श्लोकमें पडे हुए "द्व्यष्ट" पदको समासांत करके स्नानका विशेषण लगाकर चंपालालजी ने अर्थ किया है परन्तु वह उनका अर्थ गलत है शास्त्रका प्रमाण देते हुए भी वे उसका अर्थ करनेमें चूक गये हैं। और वह चूक भी उनसे इसलिये हुई मालूम होती है कि द्व्यष्ट इस पदके आगे विसर्ग (चर्चासागरमें)नहीं है इसीलिये उन्होंने स्नानका विशेषण बना डाला है।

परन्तु शुद्ध पाठ "द्व्यष्टः" ऐसा विसर्गसहित है उसका

अर्थ अष्ट द्विगुणित वर्ष है वह बालकका विशेषण है बालक-का विशेषण करनेसे सोलह वर्षका बालक अर्थ होता है।

फिर उस श्लोकका अर्थ स्पष्ट रीतिसे यही होता है, कि यादि सोलह वर्षका बालक अधिक मोहवश अपनी माताके पास रजस्वला अवस्थामें चला जाय तो उस बालककी शुद्धि स्नानसे होती है। विना स्नान किये वह १६ वर्षका बालक शुद्ध नहीं होता है। परंतु दुधमुँहा छोटा बच्चा जो मांका दूध पीता है वह जलके छींटा देने मात्रसे ही शुद्ध होजाता है।

इस संबंधमें जो झांझरीजीने यह लिखा है कि— "बालकको १६ वारकी जगह यदि ४ वार भी स्नान कराया जाय तो सर्दी निमोनिया आदि रोग होजानेका बहुत संभव है, सोलह वारके स्नानका तो कुछ प्रयोजन ही समझमें नहीं आता। विचारे बालकको जब सोलह बार स्नानका विधान है तो पुरुषको तो १६×१६=२५६ वार स्नान करना चाहिये। झांझरीजीके पर्चेकी इन पंक्तियोंकी अब कल्पना ही नहीं उठती। जब उस श्लोकका अर्थ ही १६ वर्षका बालक है न कि १६ वार स्नान तब झांझरीजीका कहना सब व्यर्थ ठहर गया। अस्तु,

हमने जो "द्व्यष्ट" पदका अर्थ १६ वर्षका बालक किया है वह कुछ अपनी समझसे नहीं किया है किन्तु जिस त्रिवर्णाचारका प्रमाण चर्चासागरमें दिया गया है उस त्रिवर्णाचारमें वही पाठ है देखिये—

तया सह तद्बालस्तु द्व्यष्टः स्नानेन शुद्ध्यति ।
तां स्पृशन् स्तनपायी चेत्प्रोक्षणेनैव शुद्ध्यति ।
(त्रिवर्णाचार सोमसेनकृत छपा हुआ पत्र ६९८ श्लोक ३८)

इस श्लोकका मराठी अर्थ जो इस श्लोकके नीचे छपा हुआ है वह इसप्रकार है—

"तिच्या जवळ असणारा तिचा मुलगा सोळा वर्षापर्यन्तचा वयाचा असल्यास तो स्नानानें शुद्ध होतो आणि स्तनपान करणारा असा असल्यास (अगदींच लहान असल्यास) अभिमन्त्रण केलेल्या उदकानें प्रोक्षण केलें म्हणजे शुद्ध होतो"

इसका अर्थ खुलासा है कि सोलह वर्षका बालक यदि मांके पास चला जाय तो स्नान करनेसे शुद्ध होता है और माका दूध पीनेवाला बच्चा जलके छींटे देनेसे ही शुद्ध हो जाता है ।

और यही बात गृहस्थोंमें आजकल भी देखनेमें आती है। छोटे बच्चे रजस्वलाकी गोदमें दूध पी आते हैं और जलके छींटे देकर शुद्धकर दूसरे घरवाले उसे गोदमें ले लेते हैं। किंतु बड़ा बालक रजस्वलाके पास चला जाय तो वह स्नान कर शुद्ध होता है ।

चर्चा नं० १९२ में जो अशक्त बीमार रजस्वला स्त्रीकी शुद्धिका विधान है, वह एक विशेष अवस्थाका विधान है । यह बात ठीक भी है कि जो स्त्री अधिक बीमार है वह यदि स्नान कर ले तो सन्निपात हो जानेकी पूरी सम्भावना है

और ज्वर उसे बराबर आताही है ऐसी दशामें चार दिनके पीछे उसकी शुद्धि होना भी आवश्यक है, अन्यथा उसे दवा देनेमें उसकी परिचर्या करनेमें आदि सभी बातोंमें अड़चन बनी रहेगी। इसीलिये ऐसी अति रुग्ण बीमार और अशक्त (बीमारीसे कमजोर)स्त्रीके लिये यदि शुद्धताका मार्ग परम्परा-रूपसे बताया गया है तो ठीक ही है नहीं तो झांझरीजीके कहनेके अनुसार जानबूझकर उस बीमार ज्वराक्रान्त रजस्वलाको स्नान कराकर परलोक भेज देना चाहिये क्या?

घरोंमें किस रूपसे शुद्धि की जाती है सो स्वयं झांझरीजी जानते ही होंगे। इस सम्बन्धमें अधिक लिखना निष्प्रयोजन है।

चर्चा नं० १९०

यहांपर भी झांझरीजीने समाजको धोखा दिया है।

चर्चासागरकी इस १९० वीं चर्चामें रजस्वला स्त्रियोंकी शुद्धि आदिका विचार किया गया है। और उसे कितने दिन अलग रहना चाहिये और कबतक पलंगपर नहीं सोना चाहिये आदि बातोंका बहुत विस्तारसे और उत्तमतासे विचार किया गया है।

ग्रन्थकार लिखते हैं—

"जो कोई अनाचारी भ्रष्ट इनका दोष नहीं मानते हैं कितने ही लोग स्पर्श करलेने पर भी स्नान नहीं करते, कितने ही लोग दूसरे तीसरे दिन स्नान कराकर उसके हाथके किये

हुए सब तरहके भोजन खा लेते हैं, कोई २ लोग उन्हीं दिनोंमें कुशील सेवन भी करते हैं परन्तु ऐसे लोग महाअधर्मी पातकी भ्रष्ट और नीचातिनीच कहलाते हैं। ऐसे लोग स्पर्श करने योग्य भी नहीं हैं, इसका भी कारण यह है कि रजोधर्मवाली स्त्रीकी पहले दिन चांडाली संज्ञा है, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी संज्ञा है तीसरे दिन रजकी संज्ञा है।"

(चर्चासागर पत्र ३३७)

इसी प्रसंगमें आगे चलकर चर्चासागरमें लिखा हुआ है कि "कितने ही पापी अपनी लक्ष्मीके मदमें आकर रजस्वला स्त्रियोंको भूमिपर नहीं सोने देते, किंतु उन्हें पलंगपर ही सुलाते हैं, यदि कोई उनका निषेध करता है तो अपनी राजनीतिका अभिमान करते हुए नहीं मानते हैं किन्तु उसी तरह चलते हैं; परंतु ऐसे लोग बड़े अधर्मी और पातकी गिने जाते हैं, जो मुनि होकर घोड़े पर चढ़े जो स्त्री रजस्वला अवस्थामें ही पलंग पर बैठे या सोवे तथा जो गृहस्थ शास्त्रसभामें बैठकर बातें करै ऐसे पुरुषोंको देखकर ही वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये।

भावार्थ–जब ऐसे लोगोंको देखनेसे ही देखनेवालोंको वस्त्रसहित स्नान करना पड़ता है तब उन लोगोंके पापकी तो बात ही क्या है अर्थात् वे बहुत भारी दोषके भागी होते हैं।

(चर्चासागर पत्र ३३८)

पाठक ! चर्चासागरकी ऊपरकी पंक्तियां पढ़ें और झांझ-

रीजीने जो अपने पर्चेमें एक अधूरी पंक्ति लिखकर जो समाजको धोखा दिया है उसे भी पढ़ें।

"जो गृहस्थ शास्त्रसभामें बैठकर बातें करें ऐसे पुरुषको देखकर वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये"

झांझरीजीने बस इतना ही लिखा है, परन्तु यह धोखा देना है पूरी पंक्तियोंका और ऊपर नीचेके वाक्योंका संबंध मिलाकर ही अर्थ करना सरलता एवं न्यायमार्ग है।

चर्चासागरकी ऊपरकी पंक्तियोंको पढ़नेसे स्पष्टरूपसे यह बात मालूम हो जाती है कि, जो लोग शास्त्रसभामें बैठकर रजस्वला स्त्रियोंके विषयमें धर्मशास्त्रके विपरीत समर्थन करते हैं वे अवश्य दोषी हैं।

यह बात प्रत्यक्ष देखी जाती है कि आज कल अनेक ऐसे भी मनुष्य दि० जैन समाजमें पैदा हो गये हैं जो मंदिरोंमें शास्त्रसभामें बैठकर रजस्वला स्त्रियोंको भी जिनमंदिर जानेका समर्थन करते हैं। जिन्हें पहले दिन चांडालिनी तुल्य बताया गया है उन्हींको ये लोग जिनमंदिर जैसे परमपवित्र वंदनीय स्थानमें भेजनेका उपदेश देते हैं, शास्त्रसभामें बैठकर विधवाविवाह, छूतअछूत,भेदलोप, जातिपांतिलोप आदि धर्मविपरीत समाजघातक बातोंका समर्थन करते हैं, इतना ही नहीं शास्त्रोंके अर्थका अनर्थ करके भी भोले लोगोंको जिनमतसे विपरीत मार्गका निरूपण करते हैं। शास्त्रीयचर्चामें, जीवतत्त्व, कर्म सिद्धान्त, गुणस्थान मार्गणा आदि

क्षयोपशम वर्धिनी चर्चामें इन सुधारकाभासोंका चित्त ही नही लगता है।इतनाही नहीं किन्तु उन्हें ये उपयोगी नहीं समझते हैं। ये तो केवल व्यवहारोपयोगी समयानुसार एवं देशकी परिस्थितिके अनुकूल बातोंमें ही प्रसन्न रहते हैं। बस, ऐसी २ धर्मघातक बातें जो शास्त्रसभामें करते हैं उन्हीं पुरुषोंके लिये चर्चासागरमें यह लिखा गया है, कि ऐसे पुरुषोंको देखकर सचेल स्नान करना चाहिये। और इसी लिये यह लिखा है कि "जब ऐसे लोगोंको देखनेसे ही देखनेवालोंको वस्त्रसहित स्नान करना पड़ताहै तो फिर उन लोगोंके पापकी तो बात ही क्या है अर्थात् वे बहुत दोषके भागी होते हैं"

इन पंक्तियोंसे और भी खुलासा होजाता है कि जो शास्त्रसभामें बैठकर पापपूर्ण बातें करते हैं वे बहुत दोषी हैं। वास्तवमें धर्मस्थानमें और धर्मोपदेशके समय जहां कि पुण्यवर्धनी और वीतरागभावोंकी संवर्धिनी कथाएँ होती हैं अनेक मोक्षगामी—पुण्य पुरुषोंके जीवन—चरित्र पढ़े जाते हैं वहां यदि कोई पुरुष यह बात लोगोंको समझाने लगे कि ये जीवनचरित्र या पुराण केवल लोगोंको समझानेके लिये कहानियां हैं, सभी बातें पुराणोंकी सच्ची नहीं हैं, तो ऐसा कहनेवाला कितना पातकी है ? वह वास्तवमें मोक्षमार्गका पूरा घातक और महादोषी है। धर्मकथाको श्रद्धा बुद्धिसे सुनकर आत्महित करनेवाले भोले पुरुषोंको यदि शास्त्रसभा-

में शास्त्रविपरीत—अधर्म मार्गका पोषण करदे तो उससे उन श्रोताओंका कितना अकल्याण होगा ? यह बात हरएक सम्यग्दृष्टिके हृदयमें स्थान पा सक्ती है।

इसीलिये चर्चासागरमें यह बात लिखी गई है कि शास्त्र-सभामें बैठकर घरसम्बधीं बातें—जिनसे कि स्त्रीकथा, भोजन-कथा, देशकथा, राजकथा, इन चार विकथाओंको सुनकर सरागभाव एवं पापास्रवकी वृद्धि हो, नहीं करना चाहिये।

यही चर्चासागरकी पंक्तियोंका भाव है, उनका यह भाव हरगिज नहीं है कि शास्त्रसभामें बैठकर यदि कोई रत्नत्रय, दशधर्म, बारह तप, द्वादश अनुप्रेक्षा, सप्त तत्त्व, षट्द्रव्य आदि बातोंकी चर्चा करता है तो उन बातोंसे भी वह व्यक्ति दोषका या पापका भागीदार होगा ?

चर्चासागर रचयिताने अपने वाक्योंका अभिप्राय जो प्रमाणमें दिये हुए श्लोकसे स्पष्ट किया है उससे तो फिर शंकाके लिये किसीको जगह ही नहीं रहती है।

देखिये यशस्तिलकचम्पूके रचयिता आचार्यप्रवर सोम-देव सूरी क्या कहते हैं—

शाक्यनास्तिकयागज्ञजटिलाजीविकादिभिः।
सहावासं सहालापं तत्सेवां च विवर्जयेत् ॥
अज्ञाततत्त्वचेतोभिर्दुराग्रहमलीमसैः।
युद्धमेव भवेद्गोष्ठ्यां दण्डादंडिकचाकचि ॥

यशस्तिलकचम्पू पत्र ४०६

अर्थात् शाक्य, नास्तिक यागज्ञ, जटिल जीविकावाले पुरुषोंके साथ रहनेका इनके साथ बातचीत करनेका और इनकी सेवा करनेका त्याग कर देना चाहिये। जो तत्वोंके यथार्थ जानकार नहीं हैं और जिनके हृदय दुराग्रहसे मलिन है ऐसे लोगोंकी गोष्ठीमें—बातचीतमें दण्डादंडी अथवा केशा-केशीका युद्ध ही होता है।

इसलिये जिन बातोंसे कलह खड़ी होजाय या जिनसे धर्मका घात हो, या समाजका अहित हो वैसी बातें मंदिरमें या शास्त्रसभामें नहीं करना चाहिये वे बातें निंद्य हैं, इसलिये उनके कहनेवालेको दोषी बताया गया है। बस यही अभिप्राय चर्चासागरका है। इति शम्।



॥ श्रीः ॥

हमारे दो शब्द।

धर्म बन्धुओ !

श्रीचर्चासागर ग्रन्थके विरोधमें कलकत्तासे भाई रतनलालजी झांझरीने २–३ पर्चे निकाले, उसके उत्तरमें हमने चर्चासागर और झांझरीजीका अकांडतांडव शीर्षक १ पर्चा मुंबईसे कितनेही श्रीमान् एवं धीमानोंकी सहीसे निकाला था, उसमें झांझरीजी और उनके मित्रोंका चर्चासागरके विरुद्ध आन्दोलन उठानेका असली मन्तव्य क्या है इस विषयका समाजको दिग्दर्शन कराया था और पंचम कालमें मुनियोंका जिनमंदिरमें निवास होना शास्त्रसम्मत है इसके लिये श्रीपद्मनंदि पंचविशंतिका अध्याय ७श्लोक ६की संस्कृतटीकाका प्रमाण पेश कियाथा और झांझरीजीसे निवेदन किया गया था कि चर्चासागरमें जो बातें दि० जैनके विरुद्ध हैं उनके लिये आपके पास शास्त्रोंके क्या प्रमाणहैं उनको आप पेश करें जिससे कि पदार्थका वास्तविक निर्णय हो। लेकिन ऐसा न कर फिरसे उन्ही बातोंका पिष्टपेषण करते हुए आपने **गोवरपंथियोंसे सावधानशीर्षक** परचा निकाल कर समाजके प्रसिद्ध सेठ पूनमचन्दजी घासीलालजी आदि श्रीमानोंको एवं अन्य विद्वानोंको कुचक्री धर्मभ्रष्ट महामिथ्यादृष्टि आदि कहकर अपनी सभ्यताका खासा परिचय दिया है। और अपनेको देव गुरु शास्त्र एवं मुनिसंघका श्रद्धालु होनेकी समाजको सूचना देकर ठीक मेरी माता वांझवाली कहावतको चरितार्थ किया है। कारण एक तरफ तो चर्चा-

नागरमें दिये हुए अनेक आचार्योंके प्रमाणोंको अप्रमाण बताकर जनताको मुनिसंघमें विश्वास न करनेकी आगाही देना और दूसरी तरफ अपनेको आचार्य एवं शास्त्रोंके श्रद्धानी प्रगट करना यह परस्पर विरोधी बात ही आपके असली स्व-रूपको प्रगट कर रही है, कि आप आचार्यवचनोंके कितने श्रद्धालु और मुनिसंघमें कितनी श्रद्धा रखनेवाले हैं।

गोमयको बड़े२आचार्योंने शुद्ध माना है उसके लिये ग्रंथोंके प्रमाण भी दिये गये हैं, इतना ही नहीं किन्तु शुद्ध आम्नायी कट्टर तरह पंथी स्व० पं०सदासुखजीने भी उसको रत्नकरं-डमें शुद्ध बतलाया है तब क्या आपके कथनानुसार सम्पूर्ण आचार्य एवं स्व० पं०सदासुखजी सभी गोबरपंथी नहीं ठहरते हैं ? महाशय!लम्बे क्यों जाते हो जिस गोमयको आप अप-वित्र और विष्टा आदि कहकर भाइयोंको भड़का रहे हैं उसी के ऊपर आप नित्य दाल बाटी चूरमा आदि बनाकर खाते हैं, इसी प्रकार जिस कन्यादान सुवर्णदान गोदान आदिको यह कुदान है मिथ्यात्व है आदि कहते हैं उन्हींको विवाहमें नित्य-प्रति ग्रहण करते चले जाते हैं क्या यह समाजको धोखा देना नही है ? महाशय ! दूसरोंको गोबरपंथी बतलाना और उन्हीं क्रियाओंको करके स्वतः शुद्ध आम्नायी बननेका दावा रखना यह बात आप जैसे व्यक्तियोंके दिलमें भलेही उपयुक्त मालूम होती हो लेकिन समाज इस बगुला भक्तिके धोखेमें अब नही आसक्ता। अस्तु अब इससमय आप समाजमें धर्मा-त्मापनेका बाना पहिनकर तेरहपंथी भाइयोंको अपना साथी

समझ रहे हैं और बीसपंथी भाइयोंको गोबरपंथी आदि कहकर उन्हें उनकी दृष्टिमें गिरानेका प्रयत्न कर रहे हैं, सो चित्तमें शांति रखिये। आप किन २ बातोंके लिये शास्त्रीय प्रमाण चाहते हैं उन्हें लिखिये और जिन बातोंकी आप बिना शास्त्रप्रमाण आगमविरुद्ध कहकर समाजको धोखा दे रहे हैं उनके लिये आप भी शास्त्रीय प्रमाण पेश करिये। हम आगम-प्रमाण माननेको हमेशा तैयार हैं,आपने अपने परचोंमें जितनी शंकायें उठाई हैं उन सबका प्रत्युत्तर अनेक शास्त्रीय प्रमाणों-द्वारा इस ट्रैक्टमें दिया गया है। समाजसे हमारी नम्र प्रार्थना है कि,तेरह बीसके पक्षको अपने हृदयमेंसे निकालकर उनपर शांतिसे विचार करें और विद्वानोंसे उन बातोंका परामर्श कर पदार्थका निर्णय करें। केवल व्यर्थ बकवाद कर समाजमें क्षोभ मचानेवाले उच्छृंखल व्यक्तियोंके चक्करमें फँस किसी अनुचित मार्गका अवलम्बन न करें।

दूसरी प्रार्थना हमारी यह भी है कि चर्चासागर ग्रन्थको अप्रमाणिक ठहरानेकी चेष्टा स्वप्नमें भी न करें। इस ग्रन्थमें बडे२आचार्योंके आगमानुकूल विषय हैं। जिसजिस विषयपर शंका उठी है उन सबका उत्तर बहुत विस्ताररूपसे ऋषि-महर्षियों तथा अनेक आचार्यप्रणीत अनेक शास्त्रोंके उदा-हरण इस ट्रैक्टमें दिये गये हैं; उन्हें सब भाई ध्यानपूर्वक पढ़ें साथमें चर्चासागरग्रन्थ, झांझरीजीके पर्चे एवं श्रीमान् वादीभकेशरी पं० मक्खनलालजी शास्त्री तथा श्रीमान् पं० रामप्रसादजी शास्त्री द्वारा संपादित ट्रैक्ट, व ट्रैक्टमें प्रमाण

दिये हुए, शास्त्र इन सबको सामने रखके शांति तथा पक्षपात रहित होकर विचार करें और इंदौर, अजमेर, दिल्ली, सहारनपुर एवं व्यावर आदिमेंसे किसी एक स्थानपर समाजके सम्पूर्ण विद्वानोंको इकट्ठा कर इस ग्रन्थमें दिये हुए प्रश्नोंपर उचित निर्णय कराया जाय तो इस झगड़ेका शीघ्र है अन्त हो जायगा।

झांझरीजीने अपने पहिले पर्चेमें भी आचार्योंको धूर्त, पाजीपन, चोर, बदमाश, धिक्कार है, महापाजीपन है आदि कितनी ही गालियां देकर सभ्यताकी हद करदी थी। और अभीके "गोबरपंथियोंसे सावधान" शीर्षक पर्चेमें भी आपने समाजके प्रसिद्ध विद्वानोंको कितनी गालियां दी हैं। यदि हमें भी गालियां देना ही इष्ट होता तो हम भी इसी तरहसे आपके सामने पेश आ सकते थे लेकिन हमारा यह अभिप्राय नहीं है अतएव हमने पर्चेमें कोई भी व्यक्तिगत आक्षेप या किसीको गाली गलौज आदि नहीं किया है, किंतु समाजके सामने विरोधी व्यक्तियोंके शब्दोंसेही उनके स्वरूपको समाजके सामने रक्खा है इसका निर्णय पाठक स्वयं अपने आप कर लें।

चर्चासागरके अन्तर्गत कुछ चर्चा ऐसी हैं जो व्यवहाररूपमें प्रचलित नहीं हैं उनको अप्रमाणिक ठहरानेकी चेष्टा न कर अपने अपने आम्नाय अनुसार क्रियायें करें इसमें किसीको किसीसे कुछ विरोध नहीं हो सकता।

निवेदक-सहायक मन्त्री—**निरञ्जनलाल जैन,**
श्री दि. जैन—हितकारिणी सभा भूलेश्वर—बम्बई २.

वीर सेवा मन्दिर

पुस्तकालय

काल नं० 2 मक्खन

लेखक शास्त्री, मक्खनलाल जी

शीर्षक चर्चा सागर ग्रन्थ पर शास्त्रीय प्रमाण

खण्ड क्रम संख्या ८५६